अभयचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तीकृत

कर्मप्रकृति

सम्पादन-अनुवाद

डॉ० गोकुलचन्द्र जैन

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला . संस्कृत ग्रन्थाङ्क ३४
ग्रन्थमाला सम्पादक : डॉ० हीरालाल जैन, आ० ने० उपाध्ये

KARMAPRAKRTI
OF ABHAYACHANDRA

Edited by
Dr Gokulchandra Jain

Published by
Bharatiya Jnanpith
First Edition 1968
Price Rs 2 00

●

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
प्रधान कार्यालय
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५
विक्रय कार्यालय
३६२०।२१, नेता जी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६
प्रथम सस्करण १९६८
मूल्य दो रुपये

सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी-५

General Editorial

The Karma doctrine elaborated in Jainism is a remarkable theory which makes an individual responsible for the consequences of one's own thoughts, words and deeds, here and elsewhere. The energy generated by the activities of mind, speech and body attract Karmic stuff towards the soul which has to bear its fruits, good as well as bad There is no place here for any divine dispensation, or supernatural intervention, either by way of favour (or grace) or punishment Basically the doctrine breeds the spirit of self-help making one realise that one reaps the fruits of what one has sown, and that there is no escape from them

A vast amount of literature has grown to propound and explain the doctrinal details about Karman (See K Ananadaji Karma-sambaṃdhī Jaina Sāhitya (in Gujarati), a paper submitted to the Seventh Gujarati Sāhitya Parisad, Bhavnagar, W Schubring Die Lehre der Jainas (Berlin und Leipzig 1935), p 215, Section 199, Śrīnipunamuni and H R Kapadia Karma-Siddhānta-saṃbaṃdhi Sāhitya (in Gujarati), Śrī-Mohanalālaji Jaina Bhaṃdāra, Surat 1965) For an expositon of the Doctrine of Karman in Jaina Philosophy one can conveniently consult a book of this title in English published by the Trustees, Bai Vijibai Jivanlal Panalal Charity Fund, Bombay, 1948, being the translation of the original dissertation in German by the late Helmuth von Glasenapp (Leipzig 1915).

The Karma-prakrti is a favourite title for a number of small and big works, some in Prākrit and some in Sanskrit (Jinaratnakosa by H. D. Velankar, Poona 1944, pp 71-2) composed by different authors The text published here is in Sanskrit It is in prose, more or less in the Sūtra style The object of the author is to enumerate the varieties and sub-varieties of Karmas and give their definitions and explanations (in relation to Gunasthānas etc.) A handy text like this could be easily memorised, in earlier days, according to the traditional method of study. It is easier to propound further details based on a text like this fully memorised

The name of the author is Abhayacandra, to be distinguished from others of the same name by his title Siddhānta-cakravartin The Mss of this work are found mostly in the South, in the Old-Kannada script The author possibly hails from Karnātaka On the basis of the available epigraphic evidence, noted by the editor, Abhayacandra-Siddhānta-cakravartin flourished in the 13th century A D He died observing Samadhi-marana, in 1279 A D

The General Editors thank Dr G C Jain for giving us in this tiny volume a neatly edited Sanskrit text of the Karmaprakrati along with a close Hindi translation of it.

H L. Jain
A N. Upadhye

प्रास्ताविक

कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थसूचीमे अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कृत कर्म-प्रकृतिकी सात पाण्डुलिपियोका परिचय दिया गया है। किसी भी पाण्डुलिपि पर लेखन काल नही है। सभीकी लिपि कन्नड है और भाषा सस्कृत।

यह एक लघु किन्तु महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमे सरल सस्कृत गद्यमे सक्षेप-मे जैन कर्म सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है। पहली बार मैने इसका सम्पादन और हिन्दी अनुवाद किया है। विषयके आधार पर मैने पूरी कृतिको छोटे-छोटे दो सौ बत्तीस वाक्य खण्डोमे विभाजित किया है।

प्रारम्भमे कर्मके द्रव्यकर्म, भावकर्म, और नोकर्म ये तीन भेद दिये गये है, उसके बाद द्रव्यकर्मके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश ये चार भेद बताये हैं। प्रकृतिके मूलप्रकृति, उत्तरप्रकृति और उत्तरोत्तरप्रकृति, ये तीन भेद हैं। मूलप्रकृति ज्ञानावरणीय आदिके भेदसे आठ प्रकारकी है और उत्तरप्रकृतिके एक सौ अडतालीस भेद है। अभयचन्द्रने बहुत ही सन्तुलित शब्दोमे इन सबका परिचय दिया है। उत्तरोत्तर प्रकृति बन्धके विषयमे कहा गया है कि इसे वचन द्वारा कहना कठिन है। इसके बाद स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्धका वर्णन है। भावकर्म और नोकर्मके विषयमे एक-एक वाक्यमे कह कर आगे ससारी और मुक्त जीवका स्वरूप तथा जीवके क्रमिक विकासकी प्रक्रियासे सम्बन्धित पाँच प्रकारकी लब्धियो तथा चौदह गुणस्थानोका वर्णन किया गया है।

विषयके अतिरिक्त भाषाका लालित्य और शैलीकी प्रवाहमयताके कारण प्रस्तुत कृतिका महत्त्व और अधिक बढ जाता है। साधारण सस्कृतका जानकार व्यक्ति भी अभयचन्द्रकी इस कृतिसे जैन कर्म सिद्धान्तकी पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर सकता है।

कर्मप्रकृतिके प्रारम्भ या अन्तमें अभयचन्द्रने अपने विषयमें विशेष जानकारी नही दी। अन्तमे केवल इतना लिखा है—

"कृतिरियम् अभयचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिन ।"

अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीके विषयमे कई शिलालेखोसे जानकारी मिलती है। मूल सघ, देशिय गण, पुस्तक गच्छ, कोण्डकुन्दान्वयकी इगलेश्वरी शाखाके श्रीसमुदायमें माघनन्दि भट्टारक हुए। उनके नेमिचन्द्र भट्टारक तथा अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ये दो शिष्य थे। अभयचन्द्र बालचन्द्र पडितके श्रुतगुरु थे।[१]

हलेबीड[२] के एक सस्कृत और कन्नड मिश्रित शिलालेखमे अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीके समाधिमरणका उल्लेख है—यह लेख शक सवत १२०१—१२७९ ईसवीका है। हलेबीड[३] के ही एक अन्य शिलालेखमे अभयचन्द्रके प्रिय शिष्य बालचन्द्रके समाधिमरणका उल्लेख है। यह लेख शक सवत् ११९७, सन् १२७८ ई०का है।

इन दोनो अभिलेखोसे अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीका समय ईसाकी तेरहवी शती प्रमाणित होता है। वे सम्भवतया १३वी शतीके प्रारम्भमे हुए और ७९ वर्ष तक जीवित रहे।

रावन्दूरके एक शिलालेख (शक १३०६) मे श्रुतमुनिको अभयचन्द्रका शिष्य बताया गया है।[४]

भारगीके एक शिलालेखमे कहा गया है कि राय राजगुरु मण्डलाचार्य महावाद वादीश्वर रायवादि पितामह अभयचन्द्र सिद्धान्तदेवका पुराना (ज्येष्ठ) शिष्य बुल्ल गौड था, जिसका पुत्र गोप गौड नागर खण्डका शासक था। नागर खण्ड कर्णाटक देशमे था।[५]

बुल्ल गौडके समाधिमरणका उल्लेख भारगीके एक अन्य शिलालेखमे है, जिसमे कहा गया है कि बुल्ल या बुल्लपको यह अवसर अभयचन्द्रकी कृपासे से प्राप्त हुआ था।[६]

---

१ E C V Belur tl, no 133 जैन शिलालेख सग्रह भाग ३, लेख ५२४
२ Ibid no 131, 132 ,, लेख ५१४
३ वही
४ E C IV Hunsūr tl no 123 ,, लेख ५८४
५ E C VIII Sorab tl no 329 ,, लेख ६१०
६ E C VIII Sorab tl no 330 ,, लेख ६४६

हुम्मचके एक शिलालेखमे अभयचन्द्रको चैत्यवासी कहा गया है।[1]

अभयचन्द्रके समाधिमरणसे सम्बन्धित उपर्युक्त शिलालेखमे कहा गया है कि वह छन्द, न्याय, निघण्टु, शब्द, समय, अलकार, भूचक्र, प्रमाणशास्त्र आदि-के प्रकाण्ड पण्डित थे। इसी तरह श्रुतमुनिने परमागमसार (१२६३ शक) के अन्तमे अपना परिचय देते हुए लिखा है—

"सद्दागम-परमागम-तक्कागम-णिरवसेसवेदी हु।
विजिद-सयलण्णवादी जयउ चिर अभयसूरि-सिद्धती॥"

इससे भी अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्तीके व्यक्तित्व पर प्रकाश पडता है।

कर्मप्रकृतिका सम्पादन और हिन्दी अनुवाद मैने सन् १९६५ मे किया था। कई कारणो से यह अब प्रकाशित हो पायी है। इसके सम्पादन-प्रकाशनमे जिनका भी योगायोग है, उन सबका आभारी हूँ।

'सत्यशासन-परीक्षा' तथा 'यशस्तिलकका सास्कृतिक अध्ययन' के बाद पुस्तक रूपमे प्रकाशित यह मेरी तीसरी कृति है। आशा है विज्ञ-जन इसमे रही त्रुटियो-की ओर ध्यान दिलाते हुए, इसका समुचित मूल्याकन करेंगे।

वाराणसी
३० सितम्बर १९६८

—गोकुलचन्द्र जैन

---

१. E C VIII Nagar tl no 46 जैन शिलालेख सग्रह भाग ३ लेख ६६७

विषय-सूची

स्थितिबन्ध

अनुभागबन्ध

प्रदेश बन्ध

भाव कर्म

नोकर्म

श्रीमद्-अभयचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिविरचिता

कर्मप्रकृतिः

[मङ्गलाचरणम्]

प्रक्षीणावरणद्वैतमोहप्रत्यूहकर्मणे ।
अनन्तानन्तधीदृष्टिसुखवीर्यात्मने नमः ॥

[१ कर्मणः त्रैविध्यम्]

आत्मनः प्रदेशेषु बद्धं कर्म द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म चेति त्रिविधम् ।

[२ द्रव्यकर्मणः चातुर्विध्यम्]

तत्र प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशभेदेन द्रव्यकर्म चतुर्विधम् ।

मगलाचरण

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घाति-कर्मोंको नाश करके अनन्तानन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य इन आत्मीय गुणोको प्राप्त करनेवाले आत्मा (परमात्मा) के लिए नमस्कार है ।

१ कर्मके तीन भेद

आत्माके प्रदेशोमे बद्ध कर्म तीन प्रकारका है—१. द्रव्यकर्म, २. भावकर्म और ३ नोकर्म ।

२ द्रव्यकर्मके भेद

द्रव्यकर्म प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेशके भेदसे चार तरहका है ।

प्रकृतिबन्धः

[३ प्रकृते स्वरूपम्]

तत्र ज्ञानप्रच्छादनादिस्वभावः प्रकृतिः ।

[४ प्रकृते त्रैविध्यम्]

सा मूलप्रकृतिरुत्तरप्रकृतिरुत्तरोत्तरप्रकृतिरिति त्रिधा ।

मूलप्रकृतयः

[५. मूलप्रकृतेरष्ट भेदा]

तत्र ज्ञानावरणीयं दर्शनावरणीयं वेदनीयं मोहनीयमायुष्यं नाम गोत्रमन्तरायश्चेति मूलप्रकृतिरष्टधा ।

[६ ज्ञानावरणीयस्य लक्षणम् उदाहरण च]

तत्रात्मनो ज्ञानं विशेषग्रहणमावृणोतीति ज्ञानावरणीयं श्लक्ष्णकाण्डपटवत् ।

---

३ प्रकृतिका स्वरूप

ज्ञानको ढँकना आदि स्वभाव प्रकृति है ।

४ प्रकृतिके भेद

वह मूल प्रकृति, उत्तर प्रकृति और उत्तरोत्तर प्रकृति, इस तरह तीन प्रकारकी है ।

५ मूल प्रकृतिके आठ भेद

उनमें ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ मूल प्रकृतिके भेद हैं ।

६ ज्ञानावरणीयका लक्षण और उदाहरण

उक्त आठ भेदो मे पतले रेशमी वस्त्रकी तरह जो आत्माके विशेषग्रहण रूप ज्ञानगुण को ढँकता है, वह ज्ञानावरणीय है ।

[७ दर्शनावरणीयस्य लक्षणम् उदाहरण च]

दर्शनं सामान्यग्रहणमावृणोतीति दर्शनावरणीयं प्रतिहारवत् ।

[८ वेदनीयस्य लक्षणम् उदाहरण च]

सुखं दुःखं वा इन्द्रियद्वारैर्वेदयतीति वेदनीयं गुडलिप्तखड्गधारावत् ।

[९. मोहनीयस्य लक्षणम् उदाहरण च]

आत्मानं मोहयतीति मोहनीयं मद्यवत् ।

[१० आयुष लक्षणम् उदाहरण च]

शरीर आत्मानमेति धारयतीत्यायुष्यं शृङ्खलावत् ।

[११ नामकर्मण लक्षणम् उदाहरण च]

नानायोनिषु नारकादिपर्यायैरात्मानं नमयति–शब्दयतीति नाम चित्रकारवत् ।

---

७. दर्शनावरणीयका लक्षण और उदाहरण

प्रतिहार की तरह जो आत्माके सामान्यग्रहणरूप दर्शन गुणको रोकता है, वह दर्शनावरणीय है ।

८ वेदनीयका लक्षण और उदाहरण

गुड-लपेटी तलवार की धारके समान जो सुख अथवा दुःखको इन्द्रियोके द्वारा अनुभव कराये, वह वेदनीय है ।

९ मोहनीयका लक्षण और उदाहरण

शराबकी तरह जो आत्माको मोहित करे, वह मोहनीय है ।

१० आयुका लक्षण और उदाहरण

शृंखलाकी तरह जो शरीरमे आत्माको रोक रखता है, वह आयु कर्म है ।

११ नाम कर्मका लक्षण और उदाहरण

चित्रकारकी तरह जो आत्माको नाना योनियोंमें नरकादि पर्यायों द्वारा नामाकित कराता है, वह नाम कर्म है ।

[१२ गोत्रस्य लक्षणम् उदाहरण च]

उच्चनीचकुलत्वेनात्मा गूयत इति गोत्रं कुम्भकारवत् ।

[१३ अन्तरायस्य लक्षणम् उदाहरण च]

दानादिविघ्न कर्तुमन्तर दातृपात्रादीना मध्यमेतीत्यन्तरायो भाण्डा-रिकवत् ।

उत्तरप्रकृतयः

[१४ उत्तरप्रकृतिना भेदा]

उत्तरप्रकृतयोऽष्टचत्वारिंशदुत्तरशतम् । तद्यथा–

ज्ञानावरणीयम्

[१५ ज्ञानावरणीयस्य पञ्च प्रकृतय]

मतिज्ञानावरणीय श्रुतज्ञानावरणीयमवधिज्ञानावरणीय मन पर्यय-ज्ञानावरणीय केवलज्ञानावरणीय चेति ज्ञानावरणीयस्य प्रकृतय पञ्च ।

---

१२ गोत्र कर्मका लक्षण और उदाहरण

कुम्भकारकी तरह जो आत्माको उच्च अथवा नीच कुलके रूपमे व्यवहृत कराता है, वह गोत्र कर्म है ।

१३ अन्तराय कर्मका लक्षण और उदाहरण

भण्डारीकी तरह जो दाता और पात्र आदिके बीचमे आकर आत्माके दान आदि मे विघ्न डालता है, वह अन्तराय कर्म है ।

१४ उत्तर प्रकृतियोके भेद

उत्तर प्रकृतिया एक सौ अडतालीस है । वे इस प्रकार है—

१५ ज्ञानावरणीयकी पाच प्रकृतियाँ

मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मन पर्यय-ज्ञानावरणीय तथा केवलज्ञानावरणीय, ये पाँच ज्ञानावरणीयकी प्रकृतियाँ है ।

[१६ मतिज्ञानावरणीयस्य स्वरूपम्]

तत्र पञ्चभिरिन्द्रियैर्मनसा च मननं ज्ञानं मतिज्ञानं तदावृणोतीति मतिज्ञानावरणीयम् ।

[१७ श्रुतज्ञानावरणीयस्य स्वरूपम्]

मतिज्ञानगृहीतार्थादन्यस्यार्थस्य ज्ञानं श्रुतज्ञानं तदावृणोतीति श्रुतज्ञानावरणीयम् ।

[१८ अवधिज्ञानावरणीयस्य स्वरूपम्]

वर्णगन्धरसस्पर्शयुक्तसामान्यपुद्गलद्रव्यं तत्सबन्धिससारीजीवद्रव्याणि च देशान्तरस्थानि कालान्तरस्थानि च द्रव्यक्षेत्रकालभवभावानवधीकृत्य यत्प्रत्यक्षं जानातीत्यवधिज्ञानं तदावृणोतीत्यवधिज्ञानावरणीयम् ।

---

१६ मतिज्ञानावरणीयका लक्षण

पाँच इन्द्रियो तथा मनकी सहायतासे होनेवाला मननरूप ज्ञान मतिज्ञान है, उसे जो ढँकता है वह मतिज्ञानावरणीय है ।

१७ श्रुतज्ञानावरणीयका लक्षण

मतिज्ञान-द्वारा ग्रहण किये गये अर्थसे भिन्न अर्थका ज्ञान श्रुतज्ञान है, उसे जो आवृत करता है वह श्रुतज्ञानावरणीय है ।

१८ अवधिज्ञानावरणीयका स्वरूप

भिन्न देश तथा भिन्न कालमे स्थित वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श युक्त सामान्य पुद्गल द्रव्य तथा पुद्गल द्रव्यके सम्बन्धसे युक्त ससारी जीव द्रव्योको जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावकी मर्यादा लेकर प्रत्यक्ष जानता है, वह अवधिज्ञान कहलाता है, उसका आवरण करनेवाला अवधिज्ञानावरणीय है ।

[१९ मन पर्ययज्ञानावरणीयस्य स्वरूपम्]

परेषां मनसि वर्तमानमर्थं यज्जानाति तन्मनःपर्ययज्ञानं तदावृणोतीति मन.पर्ययज्ञानावरणीयम् ।

[२० केवलज्ञानावरणीयस्य स्वरूपम्]

इन्द्रियाणि प्रकाशं मनश्चानपेक्ष्य त्रिकालगोचरलोकसकलपदार्थाना युगपदवभासन केवलज्ञान तदावृणोतीति केवलज्ञानावरणीयम् ।

दर्शनावरणीयम्

[२१ दर्शनावरणीयस्य नव प्रकृतय]

चक्षुर्दर्शनावरणीयमचक्षुदर्शनावरणीयमवधिदर्शनावरणीयं केवलदर्शनावरणीय निद्रा निद्रानिद्रा प्रचला प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धिरिति दर्शनावरणीय नवधा ।

---

१९ मन पर्ययज्ञानावरणीयका स्वरूप

दूसरोके मनमे स्थित अर्थको जो जानता है, वह मन पर्ययज्ञान है, उसे जो रोकता है, वह मन पर्ययज्ञानावरणीय है ।

२० केवलज्ञानावरणीयका स्वरूप

इन्द्रिय, प्रकाश और मनकी सहायताके बिना त्रिकाल गोचर लोक तथा अलोकके समस्त पदार्थोंका एक साथ अवभास (ज्ञान) केवलज्ञान है, उसे जो आवृत करता है, वह केवलज्ञानावरणीय है ।

२१ दर्शनावरणीयके नव भेद

चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय, केवलदर्शनावरणीय, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला तथा स्त्यानगृद्धि ये नौ दर्शनावरणीयके भेद हैं ।

[२२ चक्षुर्दर्शनावरणीयस्य स्वरूपम्]

तत्र चक्षुषा वस्तुसामान्यग्रहणं चक्षुर्दर्शनं तदावृणोतीति चक्षुर्दर्शनावरणीयम् ।

[२३ अचक्षुर्दर्शनावरणीयस्य स्वरूपम्]

शेषैः स्पर्शनादीन्द्रियैर्मनसा च वस्तुसामान्यग्रहणमचक्षुर्दर्शनं तदावृणोतीत्यचक्षुर्दर्शनावरणीयम् ।

[२४ अवधिदर्शनावरणीयस्य स्वरूपम्]

रूपिसामान्यग्रहणमवधिदर्शनं तदावृणोतीत्यवधिदर्शनावरणीयम् ।

[२५ केवलदर्शनावरणीयस्य स्वरूपम्]

समस्तवस्तुसामान्यग्रहणं केवलदर्शनं तदावृणोतीति केवलदर्शनावरणीयम् ।

---

२२ चक्षुदर्शनावरणीयका स्वरूप

चक्षु द्वारा वस्तुका सामान्य ग्रहण चक्षुदर्शन कहलाता है, उसका आवरण चक्षुदर्शनावरणीय है ।

२३ अचक्षुदर्शनावरणीयका स्वरूप

चक्षुके अतिरिक्त शेष स्पर्शन आदि इन्द्रियो तथा मनके द्वारा वस्तुका सामान्यग्रहण अचक्षुदर्शन है, उसका आवरण अचक्षुदर्शनावरणीय है ।

२४ अवधिदर्शनावरणीयका स्वरूप

रूपी पदार्थों का सामान्यग्रहण अवधिदर्शन है, उसका आवरण अवधिदर्शनावरणीय है ।

२५ केवलदर्शनावरणीयका स्वरूप

समस्त वस्तुओंका सामान्यग्रहण केवलदर्शन है, उसका आवरण केवलदर्शनावरणीय है ।

[२६ निद्राया स्वरूपम्]

यतो गच्छतः स्थानं तिष्ठत उपवेशनमुपविशतश्शयनं च भवति सा निद्रा ।

[२७ निद्रानिद्राया स्वरूपम्]

उत्थापितेऽपि लोचनमुद्घाटयितुं न शक्नोति यतस्सा निद्रानिद्रा ।

[२८ प्रचलाया स्वरूपम]

यत ईषदुन्मील्य स्वपिति सुप्तोऽपोषदीषज्जानाति सा प्रचला ।

[२९ प्रचलाप्रचलाया स्वरूपम्]

यतो निद्रायमाणे लाला वहत्यङ्गानि चलन्ति सा प्रचलाप्रचला ।

२६ निद्राका स्वरूप

जिसके कारण चलते, किसी स्थानपर ठहरते, बिस्तर पर बैठते नीद आती है, उसे निद्रा कहते है ।

२७ निद्रानिद्राका स्वरूप

जिसके कारण उठाये जाने (जगाये जाने) पर भी आखे न खुल सके, उसे निद्रानिद्रा कहते है ।

२८ प्रचलाका स्वरूप

जिसके कारण कुछ आँख खोलकर सोये तथा सोते हुए भी कुछ-कुछ जानता रहे, उसे प्रचला कहते है ।

२९ प्रचलाप्रचलाका स्वरूप

जिसके कारण सोते हुए लार बहे तथा अग चले, उसे प्रचला-प्रचला कहते है ।

[३० स्त्यानगृद्धेः स्वरूपम्]

यत उत्थापितेऽपि पुनः पुनः स्वपिति निद्रायमाणे चोत्थाय कर्माणि करोति स्वप्नायते जल्पति च सा स्त्यानगृद्धिः ।

वेदनीयम्

[३१ वेदनीयस्य द्वे प्रकृतय]

सातावेदनीयमसातावेदनीयं चेति वेदनीयं द्विधा ।

[३२ सातावेदनीयस्य स्वरूपम्]

तत्रेन्द्रियसुखकारणचन्दनकर्पूरस्रग्वनितादिविषयप्राप्तिकारण साता-वेदनीयम् ।

[३३ असातावेदनीयस्य स्वरूपम्]

इन्द्रियदुःखकारणविषशस्त्राग्निकण्टकादिद्रव्यप्राप्तिनिमित्तमसातावेद-नीयम् ।

---

३० स्त्यानगृद्धिका स्वरूप

जिसके कारण उठा देने पर भी फिर-फिर सो जाये, नींदमे उठकर कार्य करे, स्वप्न देखे, बडबडाये, उसे स्त्यानगृद्धि कहते है ।

३१ वेदनीयके दो भेद

सातावेदनीय और असातावेदनीय, ये दो वेदनीयके भेद हैं ।

३२ सातावेदनीयका स्वरूप

इन्द्रिय-सुखके कारण चन्दन, कर्पूर, माला, वनिता आदि विषयोकी प्राप्ति जिससे हो, वह सातावेदनीय है ।

३३ असातावेदनीयका स्वरूप

इन्द्रिय-दुःखके कारण विष, शस्त्र, अग्नि, कटक आदि द्रव्योकी प्राप्ति जिसके द्वारा हो, वह असातावेदनीय है ।

मोहनीयम्

[३४ मोहनीयस्य द्वौ भेदौ]

दर्शनमोहनीय चारित्रमोहनीय चेति मोहनीय द्विधा।

[३५ दर्शनमोहनीयस्य त्रय भेदा]

तत्र मिथ्यात्व सम्यङ्मिथ्यात्व सम्यक्त्वप्रकृतिश्चेति दर्शनमोहनीयं त्रिधा।

[३६ मिथ्यात्वस्य स्वरूपम्]

तत्रातत्त्वश्रद्धानकारण मिथ्यात्वम्।

[३७ सम्यग्मिथ्यात्वस्य स्वरूपम्]

तत्त्वातत्त्वश्रद्धानकारण सम्यङ्मिथ्यात्वम्।

---

३४ मोहनीयके दो भेद

दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय, ये दो मोहनीयके भेद हैं।

३५ दर्शनमोहनीयके तीन भेद

उनमे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्वप्रकृति, ये तीन दर्शन मोहनीयके भेद है।

३६ मिथ्यात्वका स्वरूप

उक्त तीन भेदोमे मिथ्यात्व वह है, जिससे तत्त्वकी[1] श्रद्धा न होकर विपरीत श्रद्धा हो।

३७ सम्यग्मिथ्यात्वका स्वरूप

जिससे तत्त्व तथा अतत्त्व दोनोका श्रद्धान हो वह सम्यग्मिथ्यात्व है।

[३८ सम्यक्त्वप्रकृते स्वरूपम्]

तत्त्वार्थश्रद्धानरूपं सम्यग्दर्शनं चलमलिनमगाढं करोति यत्सा सम्यक्त्वप्रकृति ।

[३९ चारित्रमोहनीयस्य द्वौ भेदौ]

कषायनोकषायभेदाच्चारित्रमोहनीय द्विधा ।

[४० कषायाणा भेदा]

तत्रानन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसज्वलनविकल्पत· प्रत्येकं क्रोधमानमायालोभा इति कषायाः षोडश ।

[४१ अनन्तानुबन्धिकषायाणा कार्यम्]

तत्रानन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभा सम्यग्दर्शनं विराधयन्ति ।

---

३८ सम्यक्त्वप्रकृतिका स्वरूप

जो तत्त्वार्थकी श्रद्धारूप सम्यग्दर्शनमे चल, मलिन तथा अगाढ दोष उत्पन्न करे, वह सम्यक्त्वप्रकृति है ।

३९ चारित्रमोहनीयके भेद

कषाय और नोकषाय भेदसे चारित्रमोहनीय दो प्रकारका है ।

४० कषायके भेद

उनमे अनन्तानुबन्धि, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण तथा सज्वलनके विकल्पसे कषाय चार प्रकारकी है और प्रत्येकके क्रोध, मान, माया तथा लोभ ये चार-चार भेद है । इस प्रकार कषायके सोलह भेद हैं ।

४१ अनन्तानुबन्धि कषायोका कार्य

अनन्तानुबन्धि, क्रोध, मान, माया और लोभ सम्यग्दर्शनका घात करते हैं—उसे वे प्रकट नही होने देते ।

[४२ अप्रत्याख्यानकषायाणा कार्यम्]

अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभा देशसंयमं प्रतिबध्नन्ति ।

[४३ प्रत्याख्यानकषायाणा कार्यम्]

प्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभास्सकलसंयमं प्रतिबध्नन्ति ।

[४४ सज्वलनकषायाणा कार्यम्]

संज्वलनक्रोधमानमायालोभा यथाख्यातचारित्रं निवारयन्ति ।

[४५ अनन्तानुबन्धिकषायाणा शक्तय]

तत्रानन्तानुबन्धिन क्रोधमानमायालोभा यथाक्रम शिलाभेदशिलास्तम्भवेणुमूलक्रिमिरागकम्बलसदृशास्तीव्रतमशक्तय ।

---

४२ अप्रत्याख्यानावरण कषायोका कार्य

अप्रख्यानावरण क्रोध, मान, माया, और लोभ देशमयमको रोकते है।

४३ प्रत्याख्यानावरण कषायोका कार्य

प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ सकलचारित्रको रोकते है ।

४४ सज्वलन कषायोका कार्य

सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ यथाख्यात चारित्रको नही होने देते है ।

४५ अनन्तानुबन्धि कषायोकी शक्ति

अनन्तानुबन्धि क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय क्रमसे शिलाखण्ड, शिलास्तम्भ, वेणुमूल (बॉस को जड) और क्रिमिराग कम्बल की तरह तीव्रतम शक्तिवाली होती है ।

[४६ अप्रत्याख्यानकषायाणां शक्तयः]

अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभा यथाक्रमं भूभेदास्थि-अविभृङ्ग-चक्रमलसदृशास्तीव्रतरशक्तयः ।

[४७ प्रत्याख्यानकषायाणां शक्तयः]

प्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभा यथाक्रमं धूलिरेखाकाष्ठगोमूत्रतनुमल-सदृशास्तीव्रशक्तयः ।

[४८ सज्वलनकषायाणां शक्तयः]

सज्वलनक्रोधमानमायालोभा यथाक्रमं जलरेखावेत्रक्षुरप्रहरिद्राराग-सदृशा मन्दशक्तयः ।

[४९ हास्यप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतो हासो भवति तद्धास्यम् ।

---

४६ अप्रत्याख्यानावरण कषायोंकी शक्ति

अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय क्रमसे पृथ्वीखण्ड, हड्डी, मेढेके सींग तथा चक्रमल (ओंगन) के सदृश तीव्रतर शक्तिवाली होती है ।

४७ प्रत्याख्यानावरण कषायोंकी शक्ति

प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया और लोभ क्रमसे धूलि-रेखा, काष्ठ, गोमूत्र तथा शरीरके मलके समान तीव्रतर शक्तिवाली होती है ।

४८ सज्वलन कषायोंकी शक्ति

सज्वलन क्रोध, मान, माया तथा लोभ क्रमसे जलरेखा, बेत, खुरपा तथा हल्दीके रंगके सदृश मन्द शक्तिवाली होती है ।

४९ हास्य प्रकृतिका लक्षण

जिससे हँसी आये, वह हास्य प्रकृति है ।

[५० रतिप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतो रमयति सा रतिः।

[५१ अरतिप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतो विषण्णो भवति सारतिः।

[५२ शोकप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतः शोचयति रोदयति स शोक ।

[५३ भयप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतो बिभेत्यनर्थात्तद्भयम्।

[५४ जुगुप्साप्रकृतेर्लक्षणम्]

यतो जुगुप्सा सा जुगुप्सा।

---

५० रतिका लक्षण

जिसके कारण रमे (प्रसन्न हो), वह रति है।

५१ अरतिका लक्षण

जिसके कारण विषण्ण हो, वह अरति है।

५२ शोकका लक्षण

जिसके कारण शोक करे, वह शोक है।

५३ भयका लक्षण

जिसके कारण अनर्थसे डरे, वह भय है।

५४ जुगुप्साका लक्षण

जिसके कारण घृणा आये, वह जुगुप्सा है।

[५५ स्त्रीवेदस्य लक्षणम्]

यत. स्त्रियमात्मानं मन्यमानः पुरुषं वेदयति रन्तुमिच्छति सः स्त्रीवेद·।

[५६ पुवेदस्य लक्षणम्]

यत पुमासमात्मानं मन्यमान स्त्रिया वेदयति रन्तुमिच्छति सः पुंवेदः।

[५७ नपुसकवेदस्य लक्षणम्]

यतो नपुसकमात्मान मन्यमान· स्त्रीपुसोर्वेदयति रन्तुमिच्छति स नपुसकवेद.।

आयुः

[५८ आयुष्कर्मण चत्वार प्रकृतय]

नारकायुष्यं तिर्यगायुष्यं मनुष्यायुष्यं देवायुष्यं चेत्यायुश्चतुर्विधम्।

---

५५ स्त्रीवेदका लक्षण

जिसके कारण अपनेको स्त्री मानता हुआ पुरुषमे रमण करनेकी इच्छा करता है, वह स्त्री वेद है।

५६ पुवेदका लक्षण

जिसके कारण अपनेको पुरुष मानता हुआ स्त्री में रमण करनेकी इच्छा करता है, वह पुवेद है।

५७ नपुसकवेद का लक्षण

जिसके कारण अपनेको नपुसक मानता हुआ स्त्री और पुरुष दोनोमे रमण करनेकी इच्छा करता है, वह नपुसकवेद है।

५८ आयुकर्म के चार भेद

नारकायुष्य, तिर्यगायुष्य, मनुष्यायुष्य और देवायुष्य इस प्रकार आयुके चार भेद है।

[५९ नरकायुषो लक्षणम्]

तत्र यन्नारकशरीरे आत्मानं धारयति तन्नारकायुष्यम् ।

[६० तिर्यगायुषो लक्षणम्]

यत्तिर्यक्छरीरे जीव धारयति तत्तिर्यगायुष्यम् ।

[६१ मनुष्यायुषो लक्षणम् ।

यन्मनुष्यशरीरे प्राणिन धारयति तन्मनुष्यायुष्यम् ।

[६२ देवायुषो लक्षणम्]

यद्दैवशरीरे देहिन धारयति तद्दैवायुष्यम् ।

नाम

[६३ नामकर्मण द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतय]

गतिजातिशरीरबन्धनसघातसस्थानाङ्गोपाङ्गसहननवर्णगन्धरसस्पर्शा-नुपूर्व्यगुरुलघूपघातपरघातातपोद्द्योतोच्छ्वासविहायोगतित्रसस्थावर-

---

५९ नरकायुष्यका लक्षण

जो आत्माको नारक शरीरमे धारण कराता है, वह नरकायुष्य है ।

६० तिर्यगायुष्यका लक्षण

जो जीवको तिर्यच-शरीरमे धारण कराता है, वह तिर्यगायुष्य है ।

६१ मनुष्यायुष्यका लक्षण

जो प्राणीको मनुष्य-शरीरमे धारण कराता है, वह मनुष्यायुष्य है ।

६२ देवायुष्यका लक्षण

जो प्राणीको देव-शरीरमे धारण कराता है, वह देवायुष्य है ।

६३ नामकर्मकी बयालीस प्रकृतियाँ

गति, जाति, शरीर, बन्धन, सघात, सस्थान, अगोपाग, सहनन, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आनुपूर्वि, अगुरुलघु, उपघात, परघात,

बादरसूक्ष्मपर्याप्तप्रत्येकशरीरसाधारणशरीरस्थिरास्थिरशुभाशुभसुभग-दुर्भगसुस्वरदुःस्वरादेयानादेययशस्कीर्त्ययशस्कीर्तिनिर्माणतीर्थकर-त्वानीतिपिण्डापिण्डरूपा नामकर्मप्रकृतयो द्वाचत्वारिंशत् ।

[६४ नामकर्मण पिण्डप्रकृतीना त्रयोनवति भेदा.]

पिण्डप्रकृतीनां भेदे तु सर्वा नामप्रकृतयस्त्रयोनवतिः ।

[६५ गतिनामकर्मण चत्वार भेदा]

नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवगतिभेदाद् गतिनाम चतुर्धा ।

[६६ नरकगतेर्लक्षणम्]

यतो जीवस्य नारकपर्यायो भवति सा नरकगतिः ।

आतप, उद्योत, उच्छ्वास, त्रस, स्थावर, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति निर्माण तथा तीर्थंकरत्व ये नामकर्मकी पिण्ड-अपिण्डरूप बयालीस प्रकृतियाँ है ।

६४ नाम कर्मकी तिरानबे प्रकृतियाँ

पिण्डप्रकृतियोके भेद करनेपर नामकर्मकी सब प्रकृतियाँ तिरानबे होती हैं ।

६५ गति नाम कर्मके चार भेद

नरकगति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति और देवगतिके भेदसे गति नाम कर्मके चार भेद है ।

६६ नरकगतिका लक्षण

जिसके कारण जीवकी नारकपर्याय होती है, वह नरकगति है ।

[६७ तिर्यग्गतेर्लक्षणम]

यतस्तिर्यंक्पर्यायो भवति प्राणिन॰ सा तिर्यंग्गति. ।

[६८ मनुष्यगतेर्लक्षणम्]

यतो मनुष्यपर्याय आत्मनो भवति सा मनुष्यगति॰ ।

[६९ देवगतेर्लक्षणम]

यतो देवपर्यायो देहिनो भवति सा देवगति ।

[७० गते सामान्यलक्षणम्]

नारकादिभवप्राप्तिर्गमनहेतुर्वा गतिनामा ।

[७१ जातिनामकमण पञ्च भेदा]

एकद्वित्रिचतु पञ्चेन्द्रियभेदाज्जातिनाम पञ्चधा ।

---

६७ तिर्यग्गतिका लक्षण

जिसके कारण जीवकी तिर्यंच पर्याय होती है, वह तिर्यंग्गति है ।

६८ मनुष्यगतिका लक्षण

जिसके कारण आत्माकी मनुष्यपर्याय होती है, वह मनुष्यगति है ।

६९ देवगतिका लक्षण

जिसके कारण प्राणीको देवपर्याय होती है, वह देवगति है ।

७० गति नाम कर्मका सामान्य लक्षण

अथवा नारक आदि भवप्राप्तिके लिए गमनका कारण गति नाम कर्म है ।

७१ जाति नाम कर्मके पाँच भेद

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पचेन्द्रियके भेदसे जाति नाम कर्मके पांच भेद हैं ।

[७२ एकेन्द्रियजातिनामकर्मण लक्षणम्]

तत्र स्पर्शनेन्द्रियवन्तो जीवा भवन्ति यत· सा एकेन्द्रियजातिः ।

[७३ द्वीन्द्रियजातिनामकर्मण लक्षणम्]

यत. स्पर्शनरसनेन्द्रियवन्तो जीवा भवन्ति सा द्वीन्द्रियजाति· ।

[७४ त्रीन्द्रियजातिनामकर्मण लक्षणम्]

यत स्पर्शनरसनघ्राणेन्द्रियवन्तो जीवा भवन्ति सा त्रीन्द्रियजाति· ।

[७५ चतुरिन्द्रियजातिनामकर्मण लक्षणम्]

यत स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुष्मन्तो जीवा भवन्ति सा चतुरिन्द्रियजाति ।

---

७२ एकेन्द्रिय जाति नामकर्मका लक्षण

जिसके कारण जीव केवल स्पर्शन इन्द्रियवान् होता है, वह एके-न्द्रिय जाति नाम कर्म है ।

७३ द्वीन्द्रिय जाति नाम कर्मका लक्षण

जिसके कारण जीव केवल स्पर्शन और रसना इन्द्रिय युक्त होता है, वह द्वीन्द्रिय जाति नाम कर्म है ।

७४ त्रीन्द्रिय जाति नाम कर्मका लक्षण

जिसके कारण जीव स्पर्शन, रसना तथा घ्राण इन्द्रिय युक्त होता है, वह त्रीन्द्रिय जाति नाम कर्म है ।

७५ चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्मका लक्षण

जिसके कारण जीव स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु युक्त होता है, वह चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्म है ।

[७६ पञ्चेन्द्रियजातिनामकर्मण लक्षणम्]

यत. स्पर्शनरसनघ्राणचक्षु श्रोत्रेन्द्रियवन्तो जीवा भवन्ति सा पञ्चेन्द्रिय-जातिः ।

[७७ शरीरनामकर्मण पञ्च भेदा]

औदारिकवैक्रियकाहारकतैजसकार्मणानीति शरीरनाम पञ्चधा ।

[७८ औदारिकशरीरनामकर्मण लक्षणम्]

तत्र यत आहारवर्गणायाता पुद्गलस्कन्धा औदारिकशरीरकरणे परि-णमन्ति तदौदारिकशरीरनाम ।

[७९ वैक्रियकशरीरनामकर्मण लक्षणम्]

यत आहारवर्गणायाता पुद्गलस्कन्धा वैक्रियकशरीररूपेण परिणमन्ति तद्वैक्रियकशरीरनाम ।

---

७६ पञ्चेन्द्रियजाति नामकर्मका लक्षण

जिसके कारण जीव स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा श्रोत्रेन्द्रिय युक्त होता है, वह पचेन्द्रिय जाति नाम कर्म है।

७७ शरीर नाम कर्मके पाँच भेद

औदारिक, वैक्रियक, आहारक तैजस और कार्मण, ये शरीर नाम कर्मके पाँच भेद है।

७८ औदारिक शरीर नाम कर्मका लक्षण

जिसके कारण आहार वर्गणा-द्वारा आये हुए पुद्गल स्कन्ध औदा-रिक शरीरके रूपमे परिणत होते है, वह औदारिक शरीर नाम कर्म है।

७९ वैक्रियक शरीर नाम कर्मका लक्षण

जिसके कारण आहार वर्गणा-द्वारा आये हुए पुद्गल स्कन्ध वैक्रियक शरीरके रूपमे परिणत होते है, वह वैक्रियक शरीर नाम कर्म है।

[८० आहारकशरीरनामकर्मण' लक्षणम्]

यत आहारवर्गणायाताः पुद्गलस्कन्धा आहारकशरीररूपेण परिणमन्ति तदाहारकशरीरनाम ।

[८१ तैजसशरीरनामकर्मण लक्षणम्]

यतस्तैजसवर्गणायाता· पुद्गलस्कन्धास्तैजसशरीररूपेण परिणमन्ति तत्तैजसशरीरनाम ।

[८२ कार्मणशरीरनामकर्मण. लक्षणम्]

कार्मणवर्गणायाता पुद्गलस्कन्धा. कार्मणशरीररूपेण परिणमन्ति यतस्तत्कार्मणशरीरनाम ।

[८३ बन्धननामकर्मण पञ्च भेदा]

औदारिकादिशरीरपञ्चकाश्रित बन्धननाम पञ्चधा ।

---

८० आहारक शरीर नाम कमका लक्षण

जिसके कारण आहार वर्गणा-द्वारा आये हुए पुद्गल स्कन्ध आहारक शरीर रूपसे परिणत होते है, उसे आहारक शरीर नाम कर्म कहते है ।

८१ तैजस शरीर नाम कर्मका लक्षण

जिसके कारण तैजस वर्गणा-द्वारा आये हुए पुद्गल स्कन्ध तैजस शरीर रूपसे परिणत होते है, वह तैजस शरीर नाम कर्म है ।

८२ कार्मण शरीर नाम कर्मका लक्षण

जिसके कारण कार्मण वर्गणा-द्वारा आये हुए पुद्गल स्कन्ध कार्मण शरीर रूप परिणत होते है, वह कार्मण शरीर नाम कर्म है ।

८३ बन्धन नाम कर्मके पाँच भेद

औदारिक आदि पॉच शरीरो के आश्रित बन्धन नाम कर्म पॉच प्रकारका है ।

[८४ औदारिकशरीरबन्धननामकर्मण लक्षणम्]

तत्रौदारिकशरीराकारेण परिणतपुद्गलाना परस्परसश्लेषरूपो बन्धो यतो भवति तदौदारिकशरीरबन्धननाम ।

[८५ वैक्रियकादिशरीरबन्धननामकर्मणा लक्षणानि]

एवं वैक्रियकाहारकतैजसकार्मणशरीराकारेण परिणतपुद्गलाना परस्परसश्लेषरूपो बन्धो यतो भवति तानि वैक्रियकाहारकतैजसकार्मणशरीरबन्धननामानि ज्ञातव्यानि ।

[८६ सघातनामकर्मण पञ्च भेदा]

औदारिकादिशरीरपञ्चकाश्रितानि सघातनामानि पञ्च ।

८४ औदारिक शरीर बन्धन नाम कर्मका लक्षण

जिसके कारण औदारिक शरीरके आकाररूपसे परिणत पुद्गलोका परस्पर सश्लेष रूप बन्ध होता है, वह औदारिक शरीर बन्धन नाम कर्म है ।

८५ वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर बन्धन नाम कर्म

इसी प्रकार जिस कारण वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीरके आकार रूपसे परिणत पुद्गलोका परस्पर सश्लेष रूप बन्ध होता है, उन्हे क्रमश वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर बन्धन नाम कर्म कहते है ।

८६ सघात नाम कर्मके पाँच भेद

औदारिक आदि पाँच शरीरोके आश्रित सघात नाम कर्म पाँच प्रकारका होता है ।

[८७ औदारिकशरीरसघातनामकर्मण लक्षणम्]

तत्रौदारिकशरीराकारेण परिणतपरस्परबद्धपुद्गलाना तदाकारवैषम्याभावकारणमौदारिकशरीरसघातनामकर्म ।

[८८ वैक्रियकादिशरीरसघातनामकर्मण लक्षणम्]

एव वैक्रियकाहारकतैजसकार्मणशरीररूपेण परिणतपरस्परबद्धपुद्गलस्कन्धाना तत्तदाकारवैषम्याभावकारणानि वैक्रियकाहारकतैजसकार्मणशरीरसघातनामानि ज्ञातव्यानि ।

[८९ सस्थाननामकर्मण षड्भेदा]

समचतुरस्रन्यग्रोधस्वातिकुब्जवामनहुण्डभेदात्सस्थाननाम षोढा ।

---

८७ औदारिक शरीर सघात नाम कर्मका लक्षण

औदारिक शरीरके आकाररूपसे परिणत परस्पर बद्ध पुद्गलोके तदाकार वैषम्यके अभावका कारण औदारिक शरीर सघात नाम कर्म है ।

८८ वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर, सघात नाम कर्मका लक्षण

इसी प्रकार वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर रूपसे परिणत, परस्पर बद्ध पुद्गल स्कन्धोके उस-उस आकारकी विषमताके अभावका कारण वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर सघात नाम कर्म है ।

८९ सस्थान नाम कर्मके छह भेद

समचतुरस्र, न्यग्रोध, स्वाति, कुब्ज, वामन और हुण्डक, ये सस्थान नाम कर्मके छह भेद हैं ।

[९० समचतुरस्रसस्थानस्य लक्षणम्]

तत्र यतः सर्वत्र दशताललक्षणलक्षितप्रशस्तसस्थानशरीराकारो भवति तत्समचतुरस्रसस्थानं नाम ।

[९१ न्यग्रोधसस्थानस्य लक्षणम्]

यत उपरि विस्तीर्णोऽध सकुचितशरीराकारो भवति तन्न्यग्रोधसस्थान नाम ।

[९२ स्वातिसस्थानस्य लक्षणम्]

यतोऽधो विस्तीर्णं उपरि सकुचितशरीराकारो भवति तत्स्वाति-सस्थानं नाम । स्वातिर्वल्मीक तत्सादृश्यात् ।

[९३ कुब्जसस्थानस्य लक्षणम्]

यतो ह्रस्व शरीराकारो भवति तत्कुब्जसस्थानं नाम ।

---

९० समचतुरस्र सस्थान का लक्षण

जिससे सब जगह दशताल लक्षणयुक्त प्रशस्त सस्थान सहित शरीर-का आकार होता है, वह समचतुरस्र सस्थान है ।

९१ न्यग्रोध सस्थानका लक्षण

जिसके कारण ऊपर विस्तीर्ण तथा नीचे सकुचित शरीराकार होता है, वह न्यग्रोध सस्थान है ।

९२ स्वाति सस्थानका लक्षण

जिसके कारण नीचे विस्तीर्ण तथा ऊपर सकुचित शरीरका आकार होता है, वह वल्मीक (वामी) सदृश होनेके कारण स्वातिसस्थान कहलाता है ।

९३ कुब्जक सस्थानका लक्षण

जिसके कारण शरीरका आकार छोटा (कुबडा) होता है, वह कुब्जक सस्थान नाम कर्म है ।

[९४ वामनसस्थानस्य लक्षणम्]

यतो दीर्घहस्तपादा ह्रस्वकबन्धश्च शरीराकारो भवति तद्वामन-संस्थानं नाम।

[९५ हुण्डकसस्थानस्य लक्षणम्]

यतः पाषाणपूर्णगोणिवत् ग्रन्थ्यादिविषमशरीराकारो भवति तद् हुण्ड-संस्थानं नाम।

[९६ अङ्गोपाङ्गनामकर्मणस्त्रयो भेदा]

औदारिकवैक्रियकाहारकशरीरभेदादङ्गोपाङ्गनाम त्रिधा।

[९७ ओदारिकशरीराङ्गोपाङ्गस्य लक्षणम्]

तत्रौदारिकशरीरस्य चरणद्वयबाहुद्वयनितम्बपृष्ठवक्षःशीर्षभेदादष्टा-ङ्गानि, अङ्गुलीकर्णनासिकाद्युपाङ्गानि करोति यत्तदौदारिकशरीरा-ङ्गोपाङ्गनाम।

---

९४ वामन सस्थानका लक्षण

जिसके कारण हाथ और पैर लम्बे तथा कबन्ध (धड) छोटा होता है, उसे वामन सस्थान कहते है।

९५ हुण्डक सस्थानका लक्षण

जिसके कारण पत्थर भरी हुई गौनकी तरह, ग्रन्थि आदिसे युक्त विषम शरीराकार होता है, उसे हुण्डक सस्थान कहते हैं।

९६ अगोपाग नाम कर्मके भेद

औदारिक, वैक्रियक और आहारक, ये अगोपाग नाम कर्मके तीन भेद है।

[९८ वैक्रियकाहारकशरीराङ्गोपाङ्गयोर्लक्षणं]

एव वैक्रियकाहारकशरीरयोरपि तदङ्गोपाङ्गकारक वैक्रियकाहारक-शरीराङ्गोपाङ्गनामद्वय ज्ञातव्यम् ।

[९९ सहननामकर्मण षट् भेदा]

वज्रवृषभनाराचसहननवज्रनाराचनाराचार्धनाराचकीलितासप्राप्त-सृपाटिकाभेदत सहनन नाम षोढा ।

[१०० वज्रवृषभनाराचसहननस्य लक्षणम्]

तत्र वज्रवत् स्थिरास्थिऋषभो वेष्टन वज्रवत् वेष्टनकीलकबन्धो यतो भवति तद्वज्रवृषभनाराचसहनन नाम ।

---

९७ औदारिक शरीर अगोपागका लक्षण

ओदारिक शरीरके दो पैर, दो हाथ, नितम्ब, पीठ, वक्षस्थल तथा शीर्ष ये आठ अग और अगुली, कर्ण, नासिका आदि उपाग जिसके कारण होते है, उसे औदारिक शरीर अगोपाग कहते है ।

९८ वैक्रियक तथा आहारक शरीर अगोपागका लक्षण

इसी तरह जिनके कारण वैक्रियक तथा आहारक शरीरके अगोपाग होते है, उन्हे क्रमश वैक्रियक तथा आहारक शरीर अगोपाग कहते है ।

९९ सहनन नाम कर्मके छह भेद

वज्रवृषभनाराचसहनन, वज्रनाराचसहनन, नाराचसहनन, अर्धनाराच-सहनन, कीलितसहनन तथा असप्राप्तसृपाटिकासहनन, ये सहनन नाम कर्मके छह भेद है ।

१०० वज्रवृषभनाराच सहननका लक्षण

जिसके कारण वज्रकी तरह स्थिर अस्थि और वृषभ वेष्टन तथा वज्र-की तरह वेष्टन और कीलक बन्ध होता है, उसे वज्रवृषभनाराच सहनन कहते है ।

[१०१ वज्रनाराचसहननस्य लक्षणम्]

यतो वज्रवत् स्थिरास्थिकीलकबन्धसामान्यवेष्टन च भवति तद्वज्रनाराचसहननम् ।

[१०२ नाराचसहननस्य लक्षणम्]

यतो वज्रवत् स्थिरास्थिबन्धसामान्यकीलिकावेष्टनमेतद्द्वय भवति तन्नाराचसहनन नाम ।

[१०३ अर्धनाराचसहननस्य लक्षणम्]

यतस्सामान्यास्थिबन्धार्धकीलिका भवति तदर्धनाराचसहनन नाम ।

[१०४ कीलितसहननस्य लक्षणम्]

यत कीलित इव सामान्यास्थिबन्धो भवति तत्कीलितसहननं नाम ।

---

१०१ वज्रनाराच सहननका लक्षण

जिसके कारण वज्रकी तरह स्थिर अस्थि तथा कीलक बन्ध होता है तथा वेष्टन सामान्य होता है। उसे वज्रनाराच सहनन कहते है।

१०२ नाराच सहननका लक्षण

जिसके कारण वज्रकी तरह स्थिर अस्थिबन्ध तथा सामान्य कीलक और वेष्टन होते है, उसे नाराच सहनन कहते है।

१०३ अर्धनाराच सहननका लक्षण

जिसके कारण सामान्य अस्थिबन्ध अर्ध कीलित होता है, उसे अर्धनाराच सहनन कहते है।

१०४ कीलित सहननका लक्षण

जिसके कारण कीलितकी तरह सामान्य अस्थिबन्ध होता है, वह कीलित सहनन है।

[१०५ असंप्राप्तसृपाटिकासहननस्य लक्षणम्]

यतः परस्परासंबद्धास्थिबन्धो भवति तदसंप्राप्तसृपाटिकासहनन नाम।

[१०६ वर्णनामकर्मण पञ्च भेदा]

श्वेतपीतहरितारुणकृष्णभेदाद् वर्णनाम पञ्चधा।

[१०७ वर्णनामकर्मण सामान्यलक्षणम्]

तत्तत्स्वस्वशरीराणा श्वेतादिवर्णान्यत्करोति तद्वर्णनाम।

[१०८ गन्धनामकर्मण द्वौ भेदा]

सुगन्धदुर्गन्धभेदाद् गन्धनाम द्वेधा।

[१०९ गन्धनामकर्मण लक्षणम्]

स्वस्वशरीराणा स्वस्वगन्ध करोति यत्तद् गन्धनाम।

---

१०५ असप्राप्तसृपाटिका सहननका लक्षण

जिसके कारण अस्थिबन्ध परस्पर असम्बद्ध होता है, उसे असम्प्राप्त-सृपाटिका सहनन कहते हैं।

१०६ वर्ण नामके पाँच भेद

श्वेत, पीत, हरित, अरुण तथा कृष्णके भेदसे वर्ण नाम पाँच प्रकार-का है।

१०७ वर्ण नाम कर्मका सामान्य लक्षण

अपने-अपने शरीरका श्वेत आदि वर्ण जिसके कारण होता है, उसे वर्ण नाम कहते हैं।

१०८ गन्ध नाम कर्मके दो भेद

सुगन्ध और दुर्गन्धके भेदसे गन्ध नाम दो प्रकारका है।

१०९ गन्ध नाम कर्मका सामान्य लक्षण

अपने-अपने शरीरकी गन्ध जिस कारण होती है, उसे गन्ध नाम कहते है।

[११० रसनामकर्मण पञ्च भेदा]

तिक्तकटुकषायाम्लमधुरभेदाद्रसनाम पञ्चधा ।

[१११ रसनामकर्मणः लक्षणम्]

तत्तत्स्वस्वशरीराणां यत्स्वस्वरसं करोति तद्रसनाम ।

[११२ लवणो नाम षष्ठो रस न पृथक्]

लवणो नाम रसो लौकिकै' षष्ठोऽस्ति । स मधुररसभेद एवेति परमागमे पृथक्त्वेन नोक्तः, लवणं विना इतररसाना स्वादुत्वाभावात् ।

[११३ स्पर्शनामकर्मण अष्टभेदा]

मृदुकर्कशगुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूक्षभेदात्स्पर्शननामाष्टकम् ।

---

११० रस नामके पाँच भेद

तिक्त, कटु, कषाय, आम्ल तथा मधुरके भेदसे रस नाम कर्मके पाँच भेद है।

१११ रस नाम कर्मका सामान्य लक्षण

अपने-अपने शरीरका जो अपना-अपना रस करता है, उसे रस नाम कर्म कहते है।

११२ लवण नामक छठा रस

लवण नामक छठा रस लोकमे माना जाता है। यह मधुर रसका ही भेद है, इसलिए परमागममे अलगसे नही कहा, क्योकि नमकके बिना तो अन्य सभी रस फीके है।

११३ स्पर्श नाम कर्मके आठ भेद

मृदु, कर्कश, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध तथा रूक्षके भेदसे स्पर्श नाम कर्म आठ प्रकारका है।

[११४ स्पर्शनामकर्मण लक्षणम्]

तत्तत्स्वस्वशरीराणा स्वस्वस्पर्शं करोति ।

[११५ आनुपूर्विनामकर्मण चत्वारो भेदा]

नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवगत्यानुपूर्विभेदादानुपूर्विनाम चतुर्धा ।

[११६ आनुपूर्विनामकर्मण लक्षणम्]

स्वस्वगतिगमने विग्रहतो त्यक्तपूर्वशरीराकारं करोति ।

[११७ अगुरुलघुनामकर्मण लक्षणम्]

अगुरुलघुनाम स्वस्वशरीर गुरुत्वलघुत्ववर्जित करोति ।

[११८ उपघातनामकर्मण लक्षणम्]

उपघातनाम स्वबाधाकारक तुन्दादिशरीरावयव करोति ।

११४ स्पर्श नाम कर्मका सामान्य लक्षण

स्पर्श नाम कर्म उस-उस अपने-अपने शरीरका अपना-अपना स्पर्श उत्पन्न करता है ।

११५ आनुपूर्वि नाम कर्मके भेद

नरकगत्यानुपूर्वि, तिर्यग्गत्यानुपूर्वि, मनुष्यगत्यानुपूर्विके तथा देव-गत्यानुपूर्विके भेदसे आनुपूर्विके चार भेद है ।

११६ आनुपूर्वि का लक्षण

इसके कारण अपनी-अपनी गतिमे जानेके लिए विग्रहगतिमे पहले छोडे गये शरीरका आकार होता है ।

११७ अगुरुलघु नाम कर्मका लक्षण

गुरुलघु नाम कर्म अपने-अपने शरीरको गुरुत्व और लघुत्वसे रहित करता है ।

११८ उपघात शरीर नाम कर्मका लक्षण

उपघात नाम कर्म अपनेको बाधा कारक तोद आदि शरीरावयवोको करता है ।

[११९ परघातनामकर्मण लक्षणम्]

परघातनाम परबाधाकारक सर्पदंष्ट्रशृङ्गादिशरीरावयवं करोति।

[१२० आतपनामकर्मण लक्षणम्]

आतपनामोष्णप्रभा करोति तत् सूर्यबिम्बे बादरपर्याप्तपृथ्वीकायिके भवति।

[१२१ उद्योतनामकर्मण लक्षणम्]

उद्योतनाम शीतलप्रभा करोति, तत् चन्द्रतारकादिबिम्बेषु तेजोवायुसाधारणवर्जितचन्द्रतारकादिबिम्बजनितबादरपर्याप्ततिर्यग्जीवेषु भवति।

[१२२ उच्छ्वासनामकर्मण लक्षणम्]

उच्छ्वासनाम उच्छ्वासनि श्वास करोति।

---

११९ परघात शरीरका लक्षण

परघात नाम कर्म दूसरोको बाधा देनेवाले सर्पदाढ, सीग आदि शरीरावयव करता है।

१२० आतप नाम कर्मका लक्षण

आतप नाम कर्म उष्ण प्रभा करता है। वह सूर्य बिम्बमे स्थित बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवोको होता है।

१२१ उद्योत नाम कर्मका लक्षण

उद्योत नाम कर्म शीतल प्रभा करता है। वह चन्द्र, तारागण आदि के विम्बमे तथा तेजकायिक वायुकायिक साधारणकायिक जीवोके सिवाय चन्द्रतारक आदि बिम्बमे होनेवाले बादरपर्याप्त तिर्यच जीवोमे होता है।

१२२ उच्छ्वास नाम कर्मका लक्षण

उच्छ्वास नाम कर्म उच्छ्वास और नि श्वासको करता है।

[१२३ विहायोगतिनामकर्मण द्वौ भेदौ]

विहायोगतिनाम प्रशस्ताप्रशस्तभेदाद् द्विधा ।

[१२४ प्रशस्तविहायोगते लक्षणम्]

तत्र प्रशस्तविहायोगतिनाम मनोज्ञं गमन करोति ।

[१२५ अप्रशस्तविहायोगते लक्षणम्]

अप्रशस्तविहायोगतिरप्रशस्तगमनं करोति ।

[१२६ त्रसनामकर्मण लक्षणम्]

त्रसनाम द्वीन्द्रियादीना चलनोद्वेजनादियुक्त त्रसकाय करोति ।

[१२७* स्थावरनामकर्मण लक्षणम्]

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतय स्थावरनाम पृथिव्याद्येकेन्द्रियाणा चलनोद्वेजनादिरहितस्थावरकाय करोति ।

---

१२३ विहायोगति नाम कमके भेद

विहायोगति नाम कर्म प्रशस्त और अप्रशस्तके भेदसे दो प्रकारका है।

१२४ प्रशस्त विहायोगतिका लक्षण

प्रशस्त विहायोगति नाम कर्म मनोज्ञ गमन करता है ।

१२५ अप्रशस्त विहायोगतिका लक्षण

अप्रशस्त विहायोगति अप्रशस्त—अमनोज्ञ गमन करता है ।

१२६ त्रस नाम कर्मका लक्षण

त्रस नाम कर्म चलन, उद्वेजन आदि युक्त द्वीन्द्रिय आदि रूप त्रसकायको करता है ।

१२७ स्थावर नाम कर्मका लक्षण

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति, स्थावर नाम कर्म पृथ्वी आदि एकेन्द्रियोके चलन, उद्वेजन आदि रहित स्थावरकायको करता है ।

[१२८ बादरनामकर्मण लक्षणम्]

बादरनाम परैर्बाध्यमानं स्थूलशरीरं करोति ।

[१२९ सूक्ष्मनामकर्मण लक्षणम्]

सूक्ष्मनाम परैरबाध्यमान सूक्ष्मशरीर करोति ।

[१३० पर्याप्तनामकर्मण लक्षणम्]

पर्याप्तनाम स्वस्वपर्याप्तीना पूर्णता करोति ।

[१३१ अपर्याप्तनामकर्मण लक्षणम्]

अपर्याप्तनाम स्वस्वपर्याप्तीनामपूर्णता करोति ।

[१३२ पर्याप्तीना षड् भेदा]

पर्याप्तयश्चाहारशरीरेन्द्रियोच्छ्वासनिःश्वासभाषामन संबन्धेन षोढा भवन्ति ।

---

१२८ बादर नाम कर्मका लक्षण

बादर नाम कर्म दूसरोके द्वारा बाधा दिये जाने योग्य स्थूल शरीरको करता है।

१२९ सूक्ष्म नाम कर्मका लक्षण

सूक्ष्म नाम कर्म दूसरोके द्वारा बाधा न दिये जाने योग्य सूक्ष्म शरीर करता है।

१३० पर्याप्त नाम कर्मका लक्षण

पर्याप्त नाम कर्म स्व-स्व पर्याप्तियोकी पूर्णता को करता है।

१३१ अपर्याप्त नाम कर्मका लक्षण

अपर्याप्त नाम कर्म अपनी-अपनी पर्याप्तियो की अपूर्णता करता है।

[१३३ आहारपर्याप्तेर्लक्षणम्]

तत्राहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानां खलरसभागरूपेण परिणमने आत्मन शक्तिनिष्पत्तिराहारपर्याप्ति.।

[१३४ शरीरपर्याप्तेर्लक्षणम्]

खलभागमस्थ्यादिकठिनावयवरूपेण, रसभाग रसरुधिरादिद्रवावयवरूपेण च परिणमयितु जीवस्य शक्तिनिष्पत्तिः शरीरपर्याप्ति ।

[१३५ इन्द्रियपर्याप्तेर्लक्षणम्]

स्पर्शनादीन्द्रियाणा योग्यदेशावस्थितस्वस्वविषयग्रहणे शक्तिनिष्पत्तिरिन्द्रियपर्याप्ति.।

---

१३२ पर्याप्तियोके छह भेद

आहार, शरीर, इन्द्रिय, उच्छ्वास-निश्वास, भाषा और मन ये पर्याप्तिके छह भेद है।

१३३ आहार पर्याप्तिका लक्षण

आहार वर्गणा द्वारा प्राप्त पुद्गल स्कन्धोका खल और रस भाग रूप परिणमनमे जीवकी शक्ति उत्पन्न होना आहार पर्याप्ति है।

१३४ शरीरपर्याप्तिका लक्षण

खल भागको अस्थि आदि कठिन अवयव रूपसे तथा रस भागको रस, रुधिर आदि द्रव अवयव रूपसे परिणत करनेमे जीवकी शक्ति उत्पन्न होना शरीर पर्याप्ति है।

१३५ इन्द्रिय पर्याप्तिका लक्षण

स्पर्शन आदि इन्द्रियोके योग्य देशमे अवस्थित अपना-अपना विषय ग्रहण करनेमे शक्ति उत्पन्न होना इन्द्रिय पर्याप्ति है।

[१३६ उच्छ्वासनिश्वासपर्याप्तेर्लक्षणम्]

आहारवर्गणायातपुद्गलस्कन्धानुच्छ्वासनिःश्वासरूपेण परिणमयितुं जीवस्य शक्तिनिष्पत्तिरुच्छ्वासनि.श्वासपर्याप्तिः ।

[१३७ भाषापर्याप्तेर्लक्षणम्]

भाषावर्गणायातपुद्गलस्कन्धान्सत्यादिचतुर्विधवाक्स्वरूपेण परिणमयितु जीवस्य शक्तिनिष्पत्तिर्भाषापर्याप्ति. ।

[१३८ मन पर्याप्तेर्लक्षणम्]

दृष्टश्रुतानुमितार्थाना गुणदोषविचारणादिरूपभावमन.परिणमने मनोवर्गणायातपुद्गलस्कन्धाना द्रव्यमनोरूपपरिणामेन परिणमयितुं जीवस्य शक्तिनिष्पत्तिर्मन.पर्याप्ति ।

---

१३६ उच्छ्वास-निश्वास पर्याप्तिका लक्षण

आहार वर्गणा-द्वारा प्राप्त पुद्गल स्कन्धोको उच्छ्वास-निश्वास रूपसे परिणत करनेके लिए जीवकी शक्ति उत्पन्न होना उच्छ्वास-निश्वास पर्याप्ति है ।

१३७ भाषा पर्याप्तिका लक्षण

भाषा वर्गणा-द्वारा प्राप्त पुद्गल स्कन्धोको सत्य आदि चार प्रकारकी वाक् रूपसे परिणत करनेके लिए जीवकी शक्ति उत्पन्न होना भाषा पर्याप्ति है ।

१३८ मन पर्याप्तिका लक्षण

देखे, सुने, तथा अनुमित (अनुमानसे जाने गये) अर्थोके गुण-दोष विचारणादि रूप भाव मनके परिणमनमे, मनोवर्गणा रूपसे प्राप्त पुद्गल स्कन्धोके द्रव्य मन रूप परिणाम द्वारा परिणत करनेके लिए जीवकी शक्ति उत्पन्न होना मन पर्याप्ति है ।

[१३९ प्रत्येकशरीरस्य लक्षणम्]

प्रत्येकशरीरनामैकस्य जीवस्यैकशरीरस्वामित्वं करोति ।

[१४० साधारणशरीरस्य लक्षणम्]

साधारणशरीरनामानन्तजीवानामेकशरीरस्वामित्वं करोति ।

[१४१ स्थिरनामकर्मण लक्षणम]

स्थिरनाम रसरुधिरमासमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणा सप्तधातूनामचलितत्व करोति ।

[१४२ अस्थिरनामकमण लक्षणम्]

अस्थिरनाम तेषा चलितत्व करोति ।

[१४३ शुभनामकर्मण लक्षणम्]

शुभनाम मस्तकादिप्रशस्तावयव करोति ।

१३९ प्रत्येक शरीरका लक्षण

प्रत्येक शरीर नाम कर्म एक जीवको एक शरीरका स्वामी करता है ।

१४० साधारण शरीरका लक्षण

साधारण शरीर नामकर्म अनन्त जीवोको एक शरीरका स्वामी करता है ।

१४१ स्थिर नाम कमका लक्षण

स्थिर नाम कर्म रस, रुधिर, मास, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र इन सात धातुओकी स्थिरताको करता है ।

१४२ अस्थिर नाम कर्मका लक्षण

अस्थिर नाम कर्म उपर्युक्त सप्त धातुओकी अस्थिरता करता है ।

[१४४ अशुभनामकर्मण लक्षणम्]

अशुभनामापानाद्यप्रशस्तावयवं करोति ।

[१४५ सुभगनामकर्मण लक्षणम्]

सुभगनाम परेषा रुचिरत्व करोति ।

[१४६ दुर्भगनामकर्मण लक्षणम्]

दुर्भगनामारुचिरत्व करोति ।

[१४७ सुस्वरनामकर्मण लक्षणम्]

सुस्वरनाम श्रवणरमणीयस्वरं करोति ।

[१४८ दुस्स्वरनामकर्मण लक्षणम्]

दुस्स्वरं नाम श्रवणदुस्सह स्वर करोति ।

---

१४३ शुभ नाम कर्मका लक्षण

शुभ नाम कर्म मस्तक आदि प्रशस्त अवयव करता है ।

१४४ अशुभ नाम कर्मका लक्षण

अशुभ नाम कर्म अपान आदि अप्रशस्त अवयवोको करता है ।

१४५ सुभग नाम कर्मका लक्षण

सुभग नाम कर्म दूसरोकी रुचिरता करता है ।

१४६ दुर्भग नाम कर्मका लक्षण

दुर्भग नाम कर्म दूसरोकी अरुचि करता है

१४७ सुस्वर नाम कर्मका लक्षण

सुस्वर नाम कर्म कर्णप्रिय स्वर करता है ।

१४८ दु स्वर नाम कर्मका लक्षण

दु स्वर नाम कर्म कानोको दु सह स्वर करता है ।

[१४९ आदेयनामकर्मण लक्षणम्]

आदेयनाम परैर्मान्यता करोति ।

[१५० अनादेयनामकर्मण लक्षणम्]

अनादेयनामामान्यता करोति ।

[१५१ यशस्कीर्तिनामकर्मण लक्षणम्]

यशस्कीर्तिनाम गुणकीर्तनं करोति ।

[१५२ अयशस्कीर्तिनामकर्मण लक्षणम्]

अयशस्कीर्तिनाम दोषकीर्तनं करोति ।

[१५३ निर्माणनामकर्मण लक्षणम्]

निर्माणनाम शरीरवत् स्वस्वस्थानेषु स्वस्थितानुप्राञ्जलित्वं करोति ।

---

१४९ आदेय नाम कर्मका लक्षण

आदेय नाम कर्म दूसरोंके द्वारा मान्यता करता है ।

१५० अनादेय नाम कर्मका लक्षण

अनादेय नाम कर्म अमान्यता करता है ।

१५१ यशस्कीर्ति नाम कर्मका लक्षण

यशस्कीर्ति नाम कर्म गुणकीर्तन करता है ।

१५२ अयशस्कीर्ति नाम कर्मका लक्षण

अयशस्कीर्ति दोषकीर्तन (बदनामी) करता है ।

१५३ निर्माण नाम कर्मका लक्षण

निर्माण नामकर्म शरीरके अनुसार स्व-स्व स्थानोंमें शरीरावयवोंका उचित निर्माण करता है ।

[१५४ तीर्थकरत्वनामकर्मण लक्षणम्]

तीर्थंकरत्वं नाम पञ्चकल्याणचतुस्त्रिंशदतिशयाष्टमहाप्रातिहार्यसमवशरणादिबहुविधौचित्यविभूतिसयुक्तार्हन्त्यलक्ष्मीं करोति ।

गोत्रम्

[१५५ गोत्रकर्मण द्वौ भेदौ]

उच्चनीचभेदाद् गोत्रकर्म द्विधा ।

[१५६ उच्चगोत्रस्य लक्षणम्]

तत्र महाव्रताचरणयोग्योत्तमकुलकारणमुच्चैर्गोत्रम् ।

[१५७ नीचगोत्रस्य लक्षणम्]

तद्विपरीताचरणयोग्यनीचकुलकारण नीचैर्गोत्रम् ।

---

१५४ तीर्थकर नामकर्म

तीर्थकर नाम कर्म पच कल्याणक, चौतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य तथा समवशरण आदि अनेक प्रकारकी उचित विभूतिसे युक्त आर्हन्त्य लक्ष्मीको करता है ।

१५५ गोत्र कर्मके भेद

उच्च और नीचके भेदसे गोत्र कर्म दो प्रकारका है ।

१५६ उच्च गोत्र कर्मका लक्षण

महाव्रतोंके आचरण योग्य उत्तम कुलका कारण उच्च गोत्र कर्म कहलाता है ।

१५७ नीच गोत्र कर्मका लक्षण

ऊपर बतायेके विपरीत आचरण योग्य नीच कुलका कारण नीच गोत्र है ।

अन्तरायम्

[१५८ अन्तरायकर्मण पञ्च भेदा]

दानलाभभोगोपभोगवीर्याश्रयभेदादन्तरायकर्म पञ्चधा।

[१५९ दानान्तरायस्य लक्षणम्]

तत्र दानस्य विघ्नहेतुर्दानान्तरायम्।

[१६० लाभान्तरायस्य लक्षणम्]

लाभस्य विघ्नहेतुर्लाभान्तरायम्।

[१६१ भोगान्तरायस्य लक्षणम्]

भुक्त्वा परिहातव्यो भोगस्तस्य विघ्नहेतुर्भोगान्तरायम्।

---

१५८ अन्तराय कर्मके भेद

दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय तथा वीर्यान्तरायके भेदसे अन्तराय कर्म पाँच प्रकारका है।

१५९ दानान्तरायका लक्षण

दानके विघ्नका कारण दानान्तराय होता है।

१६० लाभान्तरायका लक्षण

लाभके विघ्नका कारण लाभान्तराय है।

१६१ भोगान्तरायका लक्षण

जो एक बार भोग कर छोड दिया जाता है उसे भोग कहते हैं। भोगोके अन्तरायका कारण भोगान्तराय है।

[१६२ उपभोगान्तरायस्य लक्षणम्]

भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्य उपभोगस्तस्य विघ्नहेतुरुपभोगान्तरायम् ।

[१६३ वीर्यान्तरायस्य लक्षणम्]

वीर्यं शक्तिः सामर्थ्यं तस्य विघ्नहेतुर्वीर्यान्तरायम् ।

[१६४ उत्तरप्रकृतिबन्धस्य समाप्ति]

एवमुत्तरप्रकृतिबन्ध कथितः ।

[१६५ उत्तरोत्तरप्रकृतिबन्धस्यागोचरत्वम्]

उत्तरोत्तरप्रकृतिबन्धोऽगोचरो भवति ।

●

---

१६२ उपभोगान्तरायका लक्षण

एक बार भोगकर पुन भोगने योग्य उपभोग कहलाता है, उसके विघ्नका कारण उपभोगान्तराय है।

१६३ वीर्यान्तरायका लक्षण

शक्ति या सामर्थ्य वीर्य है, उसके विघ्नका कारण वीर्यान्तराय है।

१६४ उत्तर प्रकृति-बन्धका उपसहार

इस प्रकार उत्तर प्रकृति-बन्ध कहा।

१६५ उत्तरोत्तर प्रकृति-बन्ध

उत्तरोत्तर प्रकृति-बन्ध अगोचर है।

●

स्थितिबन्धः

[१६६ स्थितिबन्धकथनम्]

अथ स्थितिबन्ध उच्यते।

[१६७ स्थितिबन्धस्य लक्षणम्]

ज्ञानावरणीयादिप्रकृतीना ज्ञानप्रच्छादनादिस्वस्वभावापरित्यागेनाव-स्थान स्थिति ।

[१६८ स्थितिबन्धस्य समय]

तत्कालश्चोपचारात् ।

[१६९ ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयवेदनीयान्तरायस्य चोत्कृष्टा स्थिति]

तद्यथा ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयवेदनीयान्तरायप्रकृतीनामुत्कृष्टा स्थितिस्त्रिंशत्कोटिकोटिसागरोपमप्रमिता ।

---

१६६ स्थितिबन्धका कथन

अब स्थिति बन्ध कहते है।

१६७ स्थितिबन्धका लक्षण

ज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियोका ज्ञानको ढँकने आदि रूप अपने स्वभाव को न छोडते हुए स्थित रहना स्थिति है।

१६८ स्थितिबन्धका काल

उसके कालको उपचारसे स्थितिबन्ध कहा जाता है।

१६९ ज्ञानावरणीय आदि कर्मोकी उत्कृष्ट स्थिति

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय तथा अन्तरायकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटि-कोटि सागर प्रमाण है।

[१७० दर्शनमोहनीयस्योत्कृष्टा स्थिति]

दर्शनमोहनीयस्य सप्तति कोटिकोटिसागरोपमप्रमाणा ।

[१७१ चारित्रमोहनीयस्योत्कृष्टा स्थिति]

चारित्रमोहनीयस्य चत्वारिंशत्कोटिकोटिसागरोपमप्रमिता ।

[१७२ नामगोत्रयोरुत्कृष्टा स्थिति]

नामगोत्रयोर्विंशतिकोटिकोटिसागरोपमप्रमात्री ।

[१७३ आयुकर्मण उत्कृष्टा स्थिति]

आयुष्यकर्मणस्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमप्रमाणा । इत्युत्कृष्टस्थितिरुक्ता ।

[१७४ वेदनीयस्य जघन्यस्थिति]

वेदनीयस्य जघन्यस्थितिर्द्वादशमुहूर्ता ।

---

१७० दर्शन मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति

दर्शन मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटि-कोटि सागर प्रमाण है।

१७१ चारित्र मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति

चारित्र मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति चालीस कोटि-कोटि सागर प्रमाण है।

१७२ नाम और गोत्रकी उत्कृष्ट स्थिति

नाम और गोत्रकी उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटिकोटि सागर प्रमाण है।

१७३ आयु कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति

आयु कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर प्रमाण है।
इस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति कही।

१७४ वेदनीय कर्मकी जघन्य स्थिति

वेदनीय कर्मकी जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त है।

[१७५ नामगोत्रयो जघन्यस्थिति]

नामगोत्रयोरष्टौ मुहूर्ता ।

[१७६ शेषाणा जघन्यस्थिति]

शेषाणा ज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयमोहनीयायुष्यान्तरायाणा जघन्य-स्थितिरन्तर्मुहूर्ता ।

[१७७ सर्वेषा कर्मणा स्थिति]

सर्वेषा कर्मणा स्थितिर्नानाविकल्पा ।

[१७८ स्थितिबन्धकथनस्य उपसहार]

इति स्थितिरुक्ता ।

●

---

१७५ नाम और गोत्रकी जघन्य स्थिति

नाम और गोत्रको जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त है ।

१७६ शेष कर्मोंकी जघन्य स्थिति

शेष ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, आयु तथा अन्तरायकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है ।

१७७ सभी कर्मोंकी स्थिति

सभी कर्मोंकी स्थिति नाना प्रकार की है ।

१७८ स्थितिबन्धका उपसहार

इस प्रकार स्थितिबन्ध कहा ।

●

अनुभागबन्धः

[१७९ अनुभागबन्धकथनस्य प्रतिज्ञा]

अथानुभाग उच्यते ।

[१८० अनुभागबन्धस्य लक्षणम्]

कर्मप्रकृतीना तीव्रमन्दमध्यमशक्तिविशेषोऽनुभाग ।

[१८१ घातिकर्मणामनुभाग]

घातिकर्मणामनुभागो लतादार्वस्थिशैलसमानचतु स्थान ।

[१८२ अघातिकर्मणामनुभाग]

अघातिकर्मणामशुभप्रकृतीनामनुभागो निम्बकाञ्जेरविषहालाहल-सदृशचतु स्थान., शुभप्रकृतीनामनुभागो गुडखाण्डशर्करामृतसमान-चतु स्थान ।

---

१७९ अनुभाग बन्ध कहनेकी प्रतिज्ञा

अब अनुभाग बन्ध कहते हैं ।

१८० अनुभाग बन्धका लक्षण

कर्मप्रकृतियोकी तीव्र, मन्द, मध्यम शक्ति विशेषसे अनुभाग कहा है ।

१८१ घाति कर्मोका अनुभाग

घाति कर्मोका अनुभाग लता, दारु (काष्ठ), अस्थि तथा शिला-के समान चार प्रकार है ।

[१८३. अनुभागबन्धकथनस्योपसंहार]

इत्यनुभाग उक्तः ।

●

---

१८२ अघाति कर्मोंका अनुभाग

अघाति कर्मोंकी अशुभ प्रकृतियोंका अनुभाग नीम, कांजीर, विष, और हालाहलके समान चार प्रकारका तथा शुभ प्रकृतियोंका अनुभाग गुड, खाँड, शर्करा तथा अमृतके समान चार प्रकारका है।

१८३ अनुभाग बन्ध कथनका उपसंहार

इस प्रकार अनुभाग बन्ध कहा ।

●

प्रदेशबन्धः

[१८४ प्रदेशबन्धकथनस्य प्रतिज्ञा]

अथ प्रदेश उच्यते ।

[१८५ प्रदेशबन्धस्य लक्षणम्]

आत्मप्रदेशेषु द्व्यर्धगुणहानिगुणितसमयप्रबद्धमात्राणि सिद्धराश्यनन्तैक-भागप्रमितानामभव्यजीवस्यानन्तगुणाना सर्वकर्मपरमाणूना पर-स्परप्रदेशानुप्रवेशलक्षण प्रदेशबन्धः ।

[१८६ प्रदेशबन्धस्योपसहार]

इति प्रदेशबन्ध उक्तः ।

---

१८४ प्रदेश बन्ध कथनकी प्रतिज्ञा

आगे प्रदेशबन्ध कहते हैं ।

१८५ प्रदेशबन्ध का लक्षण

आत्माके प्रदेशोमे डेढ गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध मात्रकी सत्ता रहती है तथा प्रति समय सिद्धराशिके अनन्तवे भाग प्रमाण या अभव्य जीवोके अनन्तगुणे समस्त कर्म परमाणुओका परस्पर प्रदेशो-मे अनुप्रवेश होना प्रदेशबन्ध है ।

१८६ प्रदेशबन्ध कथनका उपसहार

इस प्रकार प्रदेशबन्ध कहा ।

[१८७ द्रव्यकर्मणामुपसहार]

एवं प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशविकल्पानि पौद्गलिकानि द्रव्यकर्माणि कथितानि ।

●

---

१८७ द्रव्यकर्मोंके कथनका उपसहार

इस प्रकार प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेशके भेदसे पौद्गलिक द्रव्य कर्म कहे ।

●

भावकर्म

[१८८ भावकर्मण लक्षणम्]

उक्तज्ञानावरणादिद्रव्यकर्मोदयजनिता आत्मनोऽज्ञानरागमिथ्यादर्शनादिपरिणामविशेषा भावकर्माणि ।

[१८९ भावकर्मणा परिमाणम्]

तान्यप्यसंख्यातलोकमात्राणि भवन्ति ।

●

---

१८८ भाव कर्मका लक्षण

उक्त ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मोके उदयसे होनेवाले आत्माके अज्ञान, राग, मिथ्यादर्शन आदि परिणामविशेष भाव कर्म हैं ।

१८९ भाव कर्मोका परिमाण

वे भाव कर्म असख्यात लोक प्रमाण है ।

●

नोकर्म

[१९० नोकर्मण लक्षणम्]

औदारिकवैक्रियकाहारकतैजसशरीरपरिणमनपुद्गलस्कन्धा नोकर्म-द्रव्याणि।

[१९१ ससारिजीवस्य लक्षणम्]

एवंविधद्रव्यभावनोकर्मसयुक्ता पञ्चविधससरणपरिणताश्चतसृषु गतिषु परिवर्तमानजीवास्ससारिण·।

[१९२ मुक्तजीवस्य लक्षणम्]

तत्कर्मत्रयमुक्तास्सिद्धगताववस्थिता· क्षायिकसम्यक्त्वज्ञानदर्शनवीर्य-सूक्ष्मत्वावगाहनागुरुलघुत्वाव्याबाधरूपाष्टगुणपरिणता· सिद्धपरिमे-ष्ठिनो जीवा मुक्ता·।

---

१९० नोकर्मका लक्षण

औदारिक, वैक्रियक, आहारक तथा तैजस शरीरके रूपमे परिणत पुद्गल स्कन्ध नोकर्म द्रव्य हैं।

१९१ ससारी जीवका लक्षण

इस प्रकार द्रव्य कर्म, भाव कर्म तथा नोकर्मसे युक्त, पाँच प्रकारके परिवर्तनोमे परिणत तथा चार गतियोमे भ्रमण करते हुए जीव ससारी हैं।

१९२ मुक्त जीवका लक्षण

उक्त तीन प्रकारके कर्मोसे मुक्त, सिद्ध गतिमे स्थित, क्षायिक सम्यक्त्व क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व तथा अव्याबाधत्वरूप अष्ट गुण परिणत सिद्ध परमेष्ठी मुक्त जीव है।

[१९३ ससारिजोवाना द्वौ भेदौ]

तत्र संसारिणो जीवा भव्याभव्यभेदेन द्विधा।

[१९४ भव्यजीवस्य लक्षणम्]

तत्र रत्नत्रयसामग्र्याः सकलकर्मक्षयं कृत्वानन्तज्ञानादिस्वरूपोपलब्धि-भवनयोग्यशक्तिविशेषसहिता भव्याः।

[१९५ भव्यजीवाना चतुर्दशगुणस्थानानि]

तत्र चतुर्दशगुणस्थानवर्तिनो भव्याः।

[१९६ अभव्यजीवस्य लक्षणम्]

एकस्मान्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादनिवर्तमाना अभव्याः।

---

१९३ ससारी जीवोके दो भेद

ससारी जीव भव्य और अभव्यके भेदसे दो प्रकारके है।

१९४ भव्य जीवका लक्षण

रत्नत्रय रूप सामग्रीके द्वारा समस्त कर्मक्षय करके अनन्त-ज्ञान आदि स्वरूप प्राप्ति होने योग्य शक्ति विशेषसे सहित जीव भव्य जीव कहलाते हैं।

१९५ भव्य जीवोके चौदह गुणस्थान

चौदह गुणस्थानोमे स्थित भव्य होते है।

१९६ अभव्य जीवका लक्षण

केवल एक मिथ्यात्व गुणस्थानमे ही रहनेवाले अभव्य जीव होते हैं।

[१९७ अभव्याना करणत्रयाभाव]

तेषां कदाचिदपि सम्यग्दर्शनप्राप्तिकारणकरणत्रयविधानासंभवात् ।

[१९८ मिथ्यात्वगुणस्थानम्]

तत्र दर्शनमोहनीयस्य मिथ्यात्वप्रकृतेरुदयादतत्त्वश्रद्धानरूपमिथ्या-दर्शनपरिणतस्सर्वज्ञवीतरागप्रणीतं जीवादितत्त्वमश्रद्धानस्संशयानो वान्यप्रणीतमतत्त्व श्रद्दधानो वा जीवो मिथ्यादृष्टिरिति प्रथमगुण-स्थानवर्ती भवति ।

[१९९ मिथ्यादृष्टे सम्यक्त्वस्य विधानम्]

अनादिमिथ्यादृष्टिर्वा सादिमिथ्यादृष्टिर्वा लब्धिपञ्चकसन्निधाने प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृह्णाति ।

---

१९७ अभव्योके करणत्रयका अभाव

उनके कभी भी सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके कारण करणत्रय होना असभव है ।

१९८ मिथ्यात्व गुणस्थान

दर्शन मोहनीयकी मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे अतत्त्वश्रद्धान रूप मिथ्यादर्शनसे युक्त, सर्वज्ञ वीतराग प्रणीत जीव आदि तत्त्वोका अश्रद्धान करनेवाला अथवा सशय करनेवाला, या अन्य प्रणीत अतत्त्वोका श्रद्धान करनेवाला जीव मिथ्यादृष्टि नामक प्रथम गुणस्थानवर्ती होता है ।

१९९ मिथ्यादृष्टिके सम्यक्त्वका विधान

अनादि मिथ्यादृष्टि अथवा सादि मिथ्यादृष्टि पाँच लब्धियोके सद्भावमे प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करता है ।

[२०० क्षयोपशमलब्धि]

तद्यथा कदाचित्कस्यचिज्जीवस्याशुभकर्मणामनुभागः प्रतिसमयमनन्त-गुणहान्युदेति, इति तेषां सर्वघातिस्पर्धकानामनन्तगुणहानिं विधाय तद्द्रव्यस्य सदवस्था उपशमः, अनन्तहीनानुभागोदये सत्यपि क्षयोपशम इत्युच्यते। तस्य लब्धिः क्षयोपलब्धिः।

[२०१ विशुद्धिलब्धि]

क्षयोपशमलब्धौ सत्यामुत्पन्नस्सातादिप्रशस्तप्रकृतिबन्धकारणं जीवस्य यो विशुद्धिपरिणामस्तल्लाभो विशुद्धिलब्धि ।

[२०२ देशनालब्धि]

षड्द्रव्यपञ्चास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थानामुपदेशकारकाचार्योपाध्याय-देशनालाभः, उपदेशकरहितक्षेत्रे पूर्वोपदिष्टजीवादितत्त्वधारणस्मरण-लाभो वा देशनालब्धि. ।

---

२०० क्षयोपशमलब्धि

कभी किसी जीवके अशुभ कर्मोंका अनुभाग प्रतिसमय अनन्त गुण हानि क्रमसे उदित होता है। इस प्रकार उन सर्वघाति स्पर्धकोकी अनन्त गुणहानि करके उस द्रव्यका सदवस्था रूप उपशम अनन्त हीन अनुभागके उदय होनेपर भी क्षयोपशम कहलाता है। उसकी लब्धि क्षायोपशमलब्धि है।

२०१ विशुद्धिलब्धि

सातादि प्रशस्त प्रकृतियोके बन्धका कारण जीवका जो विशुद्धि परिणाम क्षयोपशम लब्धिके होनेपर उत्पन्न होता है उसका लाभ विशुद्धिलब्धि है।

[२०३ प्रायोग्यतालब्धि]

आयुर्वर्जितसप्तकर्मणामुत्कृष्टस्थितिं विशुद्धिपरिणामविशेषेण खण्डयित्वान्त:कोटिकोटिस्थितिं स्थापयति, लतादार्वस्थिशैलरूपघातिकर्मानुभागं खण्डयित्वा लतादारुरूपद्विस्थानं स्थापयति, तद्विशुद्धिपरिणामयोग्यतालाभः प्रायोग्यतालब्धिः ।

[२०४ करणलब्धि]

दर्शनमोहोपशमनादिकरणविशुद्धपरिणामः करण इत्युच्यते । तल्लाभः करणलब्धि ।

---

२०२ देशनालब्धि

छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व, तथा नव पदार्थोंके उपदेश करनेवाले आचार्य, उपाध्यायकी देशनाका लाभ अथवा उपदेशक रहित क्षेत्रमे पूर्व उपदिष्ट जीव-आदि तत्त्वोके धारण, स्मरणका लाभ देशनालब्धि है।

२०३ प्रायोग्यतालब्धि

आयुको छोडकर शेष सात कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिको विशुद्धि परिणाम-विशेष-द्वारा खण्डित करके अन्त कोटिकोटि प्रमाण स्थितिमे स्थापित करना। तथा लता, दारु (काष्ठ), अस्थि, शैलरूप घाति कर्मोंके अनुभागको खण्डित करके लता, दारुरूप दो स्थानोमे स्थापित करना है। इस प्रकारकी विशुद्धिरूप परिणामोकी योग्यताका लाभ प्रायोग्यतालब्धि है।

२०४ करणलब्धि

दर्शन मोहके उपशम आदि करनेवाला विशुद्धि परिणाम करण कहलाता है, उसका लाभ करणलब्धि है।

[२०५ करणस्य त्रयो भेदा]

स च करणोऽध प्रवृत्तकरणोऽपूर्वकरणोऽनिवृत्तिकरणश्चेति त्रिधा ।

[२०६ अध प्रवृत्तकरणस्य काल]

तत्राध प्रवृत्तकरणकालोऽन्तर्मुहूर्तमात्र. ॥२७७७॥

[२०७ अपूर्वकरणस्य काल]

ततः सख्येयगुणहीनोऽपूर्वकरणकाल. ॥२७७॥

[२०८ अनिवृत्तिकरणस्य काल]

तत संख्येयगुणहीनोऽनिवृत्तिकरणकालः ॥२७॥

[२०९ त्रयाणा करणाना काल]

त्रितयं समुदितमप्यन्तर्मुहूर्तकाल एव ।

---

२०५ करणके तीन भेद

वह करण अध प्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरणके भेदसे तीन प्रकारका है ।

२०६ अध प्रवृत्तकरणका काल

अध प्रवृत्तकरणका काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है ।

२०७ अपूर्वकरणका काल

उससे सख्यात गुणहीन अपूर्वकरणका काल है ।

२०८ अनिवृत्तिकरणका काल

उससे सख्यात गुणहीन अनिवृत्तिकरणका काल है ।

२०९ तीनो करणोका सम्मिलित काल

तीनो करणोका सम्मिलित काल भी अन्तर्मुहूर्त्त ही है ।

[२१०. करणत्रयेषु विशुद्धि]

अधःप्रवृत्तकरणप्रथमसमयादारभ्य विशुद्धि· प्रतिसमयमनन्तगुणा अप्यनिवृत्तिकरणचरमसमयं वर्तन्ते ।

[२११ अध प्रवृत्तकरणकाले विशुद्धिपरिणाम]

तत्राध·प्रवृत्तकरणकाले सख्यातलोकमात्रविशुद्धिपरिणामविकल्पा जघन्यमध्यमोत्कृष्टा· सन्ति ।

[२१२ अध प्रवृत्तकरणस्याङ्कसदृष्टि]

तत्राङ्कसंदृष्ट्याध·प्रवृत्तकरणलक्षणमुच्यते—प्रथमसमयनानाजीवानां विशुद्धिपरिणामविकल्पानां जघन्यखण्डमिदम् ३९ । अस्माद्द्वितीयं खण्ड विशेषाधिकम् ४० । तृतीयं विशेषाधिकं ४१ । एवं चरमचतुर्थ· खण्डं विशेषाधिकं ४२ । द्वितीयसमये जघन्यखण्डं प्रथमसमयजघन्य· खण्डाद्विशेषाधिकम् ४० । ततो द्वितीयखण्डं विशेषाधिकं ४१ ।

---

२१० करणत्रयमे विशुद्धि

अध प्रवृत्तकरणके प्रथम समयसे आरम्भ करके विशुद्धि प्रति समय अनन्तगुणी होकर भी अनिवृत्तिकरणके चरम समय तक रहती है।

२११ अध प्रवृत्तकरण कालमे विशुद्धि परिणाम

अध प्रवृत्तकरणके समयमे असख्यात लोकमात्र विशुद्धि परिणाम विकल्प जघन्य, मध्यम तथा उत्कृष्ट होते है।

२१२ अध प्रवृत्तकरणकी अक सदृष्टि

अकसदृष्टिकी अपेक्षा अध प्रवृत्तकरणका लक्षण कहते हैं—प्रथम समयमे नाना जीवोंके विशुद्धि परिणाम विकल्पोंका जघन्य खण्ड ३९ है। इससे द्वितीय खण्ड विशेष अधिक है ४०। इससे तीसरा विशेष अधिक है ४१। इसी प्रकार अन्तिम चौथा खण्ड भी विशेष अधिक

ततस्तृतीयखण्डं विशेषाधिकं ४२। एवं चरमखण्डं विशेषाधिकं ४३। एवं तृतीयादिसमयेषु जघन्यादिखण्डानि विशेषाधिकानि भवन्ति। ये केषांचिज्जीवानामुपरिमसमयपरिणमनवर्तिना विशुद्धिपरिणामविकल्पा अधःस्तनसमयवर्तिनां केषाचिज्जोवानां विशुद्धिपरिणामविकल्पैस्सह सदृशास्सन्तीत्यधःप्रवृत्तकरणसंज्ञा युक्ता। तत्र प्रथमसमयजघन्यखण्डं चरमसमयचरमखण्डं च केनापि जघन्योत्कृष्टेन सदृशं न भवति, तथापि तद्द्वयं विहायेतरेषां सर्वेषां खण्डानामुपर्यधश्च सादृश्यमस्तीति, तेनाध.प्रवृत्तकरणसंज्ञा न विरुध्यते। अस्मिन्नध प्रवृत्तकरणे प्रशस्तप्रकृतीनामनुभागः प्रतिसमयेऽनन्तगुणं वर्धते, अप्रशस्तप्रकृतीनामनुभागः प्रतिसमयमनन्तगुणहीनो भवति, संख्यातसहस्रस्थितिबन्धापसरणानि भवन्ति, प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्धया विशुद्धिश्च वर्तते, इत्येतानि चत्वार्यावश्यकानि सन्ति।

है ४२। द्वितीय समयमे जघन्य खण्ड प्रथम समयके जघन्य खण्डसे विशेष अधिक है ४०। उससे द्वितीय खण्ड विशेष अधिक है ४१। उससे तृतीय खण्ड विशेष अधिक है ४२। इसी प्रकार अन्तिम चौथा खण्ड विशेष है ४३। इस प्रकार तृतीय आदि समयोमे तथा अन्तिम समयमे जघन्य आदि खण्ड विशेष अधिक होते है। जो किन्ही जीवोके ऊपरके समयमे परिणमन करनेवाले विशुद्धि परिणाम विकल्प निम्न समयवर्ती किन्ही जीवोंके विशुद्धि परिणाम विकल्पोके साथ समान होते है। इसलिए इसकी अध.प्रवृत्तकरण सज्ञा उचित है। यद्यपि प्रथम समयका जघन्य खण्ड तथा अन्तिम समयका अन्तिम खण्ड किसी भी जघन्य या उत्कृष्ट खण्डके सदृश नही होता, फिर भी उन दोनोको छोडकर अन्य सभी खण्डोका ऊपर तथा नीचे सादृश्य है, इसलिए अध प्रवृत्तकरण कहनेमे विरोध नही आता। इस अध.प्रवृत्तकरणमे—प्रशस्त प्रकृतियोका अनुभाग प्रति समय अनन्तगुणा बढता है तथा अप्रशस्त प्रकृतियोका अनुभाग प्रति

पुनर्गुणश्रेणिनिर्जरागुणसंक्रमस्थितिकाण्डकघातानुभागकाण्डकघाता-श्चेति चत्वार्यावश्यकानि न सन्ति, तत्कारणविशुद्धिविशेषाभावात् ।

[२१३ अपूर्वकरणम्]

ततः परमपूर्वकरणप्रथमसमये गुणश्रेणिनिर्जरागुणसक्रमस्थितिकाण्ड-कघाताश्च प्रारभ्यन्ते । अत्रापि जघन्यमध्यमोत्कृष्टा विशुद्धिपरिणामा-ध.प्रवृत्तपरिणामेभ्यो सख्यातलोकगुणिता. सन्ति । तत्र प्रथमसमय-वर्तिनानाजीवविशुद्धिपरिणामा असख्यातलोकमाता अङ्कसंदृष्ट्या ४५६। एते सर्वेऽप्येकेनैव खण्डं बहुखण्डानीव सन्ति । उपरितनसमय-परिणामैस्सादृश्याभावात् । द्वितीयसमयपरिणामा विशेषाधिका. ४७२। एतेऽप्येकमेव खण्डम् । उपर्यधोऽधत्वसादृश्याभावाद्बहुखण्डाभावः ।

समय अनन्तगुणा हीन होता है । सख्यात सहस्र स्थितिबन्धापसरण होते है तथा प्रति समय अनन्तगुणी वृद्धिके हिसाबसे विशुद्धि होती है ।—ये चार आवश्यक होते हैं । किन्तु गुणश्रेणी निर्जरा, गुणसक्रम, स्थितिकाण्डकघात तथा अनुभागकाण्डकघात, ये चार आवश्यक नही होते है, क्योकि इनके कारण विशुद्धि-विशेषरूप परिणामोका अभाव है ।

२१३ अपूर्वकरण

इसके बाद अपूर्वकरणके प्रथम समयमे गुणश्रेणि निर्जरा, गुण-सक्रम, स्थिति काण्डकघात तथा अनुभाग काण्डकघात प्रारम्भ होते हैं । यहाँ भी जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट विशुद्धि परिणाम अध प्रवृत्तकरणके परिणामोसे असख्यात लोक गुणे होते हैं । यहाँ प्रथम समयवर्ती नाना जीवो के विशुद्धि परिणाम असख्यात लोक-प्रमाण होते है । उनकी अक सदृष्टि ४५६ है । ये सभी एक ही खण्डसे बहुत खण्डोकी तरह होते है क्योकि ऊपरके समयवर्ती परिणामोके साथ सादृश्यका अभाव है ।

एवं तृतीयादिसमयेष्वाचरमसमयं विशुद्धिपरिणामा एकैकखण्डं कृताः विशेषाधिका· सन्ति। अत एव कारणात्पूर्वपूर्वसमयोऽप्रवृत्ता एव विशुद्धिपरिणामा उत्तरसमये भवन्तीत्यपूर्वकरणसंज्ञा युक्ता। तस्याङ्कसंदृष्टिः —

५	६	७
५	५	२
५	३	६
५	२	०
५	०	४
४	८	८
४	७	२
४	५	६

द्वितीय समयवर्ती परिणाम विशेष अधिक होते है ४७२। ये भी एक ही खण्ड हैं। ऊपर और नीचे अधत्वके सादृश्यका अभाव होनेसे बहुत खण्ड नही होते। इसी प्रकार तृतीय आदि समयोमे चरम समय पर्यन्त विशुद्धि परिणाम एक-एक खण्ड करके ही विशेष अधिक होते है। इसी कारणसे पूर्व पूर्व समयमे नही हुए अप्रवृत्त ही विशुद्धि परिणाम उत्तर समयमे होते हैं, इसलिए अपूर्वकरण कहना उचित है। इसकी अक संदृष्टि ऊपर दी है।

[२१४. अनिवृत्तिकरणम्]

ततः परमनिवृत्तिकरणप्रथमसमये नानाजीवानां विशुद्धिपरिणामोऽपूर्वकरणे चरमसमयसर्वोत्कृष्टविशुद्धिपरिणामादनन्तगुणविशुद्धिर्जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पाभावादेकादृश एव। द्वितीयसमयेऽपि प्रथमसमयविशुद्धेरनन्तगुणविशुद्धिर्नानाजीवानामेकादृश एव विशुद्धिपरिणामो भवति। एवं तृतीयादिसमयेष्वनिवृत्तिकरणचरमसमयं प्रतिसमयमनन्तगुणवृद्ध्या विशुद्ध्या वर्धमानोऽपि नानाजीवानां विशुद्धिपरिणामो जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्परहित एकादृश एव भवति। अत एव कारणान्निवृत्तिभेदो जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्पपरिणामस्य नास्तीत्यनिवृत्तिकरणसंज्ञा युक्ता।

[२१५ अनिवृत्तिकरणस्य विशेष]

तस्यानिवृत्तिकरणस्य चरमसमये भव्यश्चातुर्गतिको मिथ्यादृष्टिः संज्ञी पंचेन्द्रियपर्याप्तो गर्भजो विशुद्धिवर्धमान. शुभलेश्यो जाग्रदव-

---

२१४ अनिवृत्तिकरण

इसके बाद अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमे नाना जीवोके विशुद्धि परिणाम अपूर्वकरण मे चरम समय सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि परिणामोसे अनन्तगुणे विशुद्ध जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट विकल्पोके न होनेके कारण एक सदृश ही होते है। द्वितीय समयमे भी प्रथम समयकी विशुद्धिसे अनन्तगुणी विशुद्धियुक्त नाना जीवो के विशुद्धि परिणाम एक सदृश ही होते हैं। इसी प्रकार तृतीय आदि समयोमे अनिवृत्तिकरणके चरम समय पर्यन्त प्रति समय अनन्तगुणी वृद्धि युक्त विशुद्धिसे बढने वाले भी नाना जीवोके विशुद्धि परिणाम जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट विकल्प रहित एक सदृश ही होते हैं। इसी कारणसे जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट परिणामोमे निवृत्ति-भेद नही है, इसलिए अनिवृत्तिकरण कहना उचित है।

स्थितो ज्ञानोपयोगवान् अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभान्मिथ्यात्व-सम्यङ्मिथ्यात्वसम्यक्त्वप्रकृतिश्चोपशमय्य प्रथमोपशमसम्यक्त्वं गृह्णाति । तस्य कालो जघन्योत्कृष्टेनान्तर्मुहूर्तः ।

[२१६ सासादननाम द्वितीयगुणस्थानम्]

तत्रैकसमयादारभ्य षडावलिसमयपर्यन्ते कालेऽवशिष्टे सति अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभानां मध्येऽन्यतमस्य कषायस्योदये सति जीव. सम्यक्त्वं विराध्य यावन्मिथ्यात्वं प्राप्नोति तावत्सासादनसम्यग्दृष्टिर्द्वितीयगुणस्थानवर्ती भवति ।

[२१७ सासादनगुणस्थानस्य काल]

तस्य कालो जघन्य एकसमय उत्कृष्ट षडावलिमात्रस्ततः परं नियमेन मिथ्यात्वप्रकृतेरुदयान्मिथ्यादृष्टिर्भवति ।

---

२१५ अनिवृत्तकरणका विशेष

उस अनिवृत्तिकरणके चरम समयमे भव्य चारो गतियोमे-से किसी भी गतिमे वर्तमान, मिथ्यादृष्टि, सज्ञी पचेन्द्रिय, पर्याप्तक, गर्भज, जिसकी विशुद्धि बढ रही है, शुभ लेश्या वाला, जागृत, ज्ञानोपयोगवान्, अनन्तानुबन्धि क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्प्रकृतिका उपशम करके प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करता है। उसका जघन्य तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

२१६ सासादन नामक द्वितीय गुणस्थान

उसमें-से एक समयसे लेकर षडावलि समय पर्यन्त काल शेष रहनेपर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया तथा लोभमें-से किसी एक कषायके उदय होनेपर जीव सम्यक्त्वकी विराधना करके जब तक मिथ्यात्वको प्राप्त होता है, तब तक सासादन सम्यग्दृष्टि नामक द्वितीय गुणस्थानवर्ती होता है।

[२१८ सम्यग्मिथ्यादृष्टिनाम तृतीयगुणस्थानम्]

सम्यङ्मिथ्यात्वप्रकृतेरर्हदुपदिष्टसन्मार्गे मिथ्यात्वादिकल्पितदुर्मार्गे च श्रद्धावान् जीवः सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति तृतीयगुणस्थानवर्ती भवति।

[२१९ तृतीयगुणस्थानस्य स्थिति]

तद्गुणस्थाने उत्तरगत्यायुर्बन्धो मरणं मारणान्तिकसमुद्घातगुणव्रत-महाव्रतग्रहणं च नास्ति। यदा म्रियते तदा सम्यक्त्वं मिथ्यात्वं वा प्रतिपद्य म्रियते सम्यङ्मिथ्यात्वे न म्रियते। सम्यङ्मिथ्यात्वपरि-णामात्पूर्वस्मिन्सम्यक्त्वे वा मिथ्यात्वे वा परभवायुर्बन्धे तदेवासयत-सम्यग्दृष्टिगुणस्थानं वा मिथ्यादृष्टिगुणस्थानं वा प्राप्य म्रियत इत्यर्थः।

---

२१७ सासादन गुणस्थानका समय

उसका जघन्य काल एक समय तथा उत्कृष्ट षडावलि मात्र है। उसके बाद नियमसे मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय होनेके कारण मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

२१८ सम्यग्मिथ्यादृष्टि नामक तृतीय गुणस्थान

सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे अर्हन्त-द्वारा उपदिष्ट सन्मार्ग मे तथा मिथ्यात्व आदि कल्पित दुर्मार्गमे श्रद्धान करनेवाला जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि नामक तृतीय गुणस्थानवर्ती होता है।

२१९ तृतीय गुणस्थानकी स्थिति

इस गुणस्थानमे आगेकी गतिके लिए आयु बन्ध, मरण, मारणान्तिक समुद्घात तथा अणुव्रत या महाव्रतका ग्रहण नही होता। जब मरता है तो सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वको प्राप्त करके मरता है। सम्यग्मिथ्यात्वमे नही मरता। अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्व परिणामसे पहले सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वमे परभवकी आयुका बन्ध होनेपर उसी असयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान अथवा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानको प्राप्त करके मरता है।

[२२० असयतसम्यग्दृष्टिनाम चतुर्थगुणस्थानम्]

औपशमिकसम्यक्त्वे वा क्षायिकसम्यक्त्वे वा वेदकसम्यक्त्वे वा वर्तमानो जीवोऽप्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभकषायोदयाद्द्वादशविधेऽसंयमे प्रवृत्तोऽसंयतसम्यग्दृष्टिरिति चतुर्थगुणस्थानवर्ती भवति ।

[२२१ देशसयमो नाम पञ्चमगुणस्थानम्]

द्वितीयकषायोदयाभावे जीवोऽणुगुणशिक्षाव्रतरूप एकादशनिलयविशिष्टे देशसंयमे वर्तमानः श्रावक इति पञ्चमगुणस्थानवर्ती भवति ।

[२२२ प्रमत्तसयतनाम षष्ठगुणस्थानम्]

प्रत्याख्यानावरणकषायोदयाभावे महाव्रतरूप सकलसंयमं प्रतिपद्य सज्वलननोकषायमध्यमानुभागोदयात्पञ्चदशसु प्रमादेषु वर्तमानो जीव. प्रमत्तसयत इति षष्ठगुणस्थानवर्ती भवति ।

---

२२० असयत सम्यग्दृष्टि नामक चौथा गुणस्थान

औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिकसम्यक्त्व अथवा वेदकसम्यक्त्वमे वर्तमान जीव अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया तथा लोभ कषायके उदयके कारण बारह प्रकारके असयममे प्रवृत्त रहनेसे असयत सम्यग्दृष्टि नामक चतुर्थ गुणस्थानवर्ती होता है ।

२२१ देशसयम नामक पाँचवाँ गुणस्थान

द्वितीय अर्थात् अप्रत्याख्यानावरण कषायोके अभावमे जीव अणुव्रत, तथा शिक्षाव्रत रूप ग्यारह स्थान विशिष्ट देशसयममे वर्तमान श्रावक पचम गुणस्थानवर्ती होता है ।

[२२३ अप्रमत्तसयतनाम सप्तमगुणस्थानम्]

संज्वलनक्रोधमानमायालोभकषायमन्दानुभागोदयात्सकलहिंसादिनिवृत्तिरूपसंयमे प्रमादरहिते वर्तमानो जीवोऽप्रमत्तसंयत इति सप्तमगुणस्थानवर्ती भवति।

[२२४ सातिशयाप्रमत्तस्य लक्षणम्]

स एव यदा क्षपकोपशमकश्रेण्यारोहण प्रत्यभिमुखो भवति तदा करणत्रयमध्येऽध.प्रवृत्तकरणं करोतीति स एव सातिशयाप्रमत्त इत्युच्यते।

---

२२२ प्रमत्तसयत नामक छठा गुणस्थान

प्रत्याख्यानावरण कषायोके उदयके अभावमे महाव्रत रूप सकल सयमको प्राप्त करके सज्वलन नोकषायके मध्यम अनुभागके उदयके कारण पन्द्रह प्रमादोमे वर्तमान जीव प्रमत्त सयत नामक छठे गुणस्थानवर्ती होता है।

२२३ अप्रमत्तसयत नामक सातवाँ गुणस्थान

सज्वलन क्रोध, मान, माया तथा लोभ कषायके मन्द अनुभागके उदयसे सकल हिसा आदि निवृत्तिरूप प्रमाद रहित संयममे वर्तमान जीव अप्रमत्तसयत नामक सप्तम गुणस्थानवर्ती होता है।

२२४ सातिशय अप्रमत्त सयतका लक्षण

वही जब क्षपक या उपशम श्रेणि चढनेके अभिमुख होता है, तब तीन करणोमें-से अध प्रवृत्तकरण करता है, इसलिए वही सातिशय अप्रमत्त कहलाता है।

[२२५ अपूर्वकरणो नामाष्टमगुणस्थानम्]

पुनः क्षपकश्रेणिमुपशमकश्रेणिं वा समारुह्य प्रतिसमयमनन्तगुण-विशुद्धया वर्धमानो गुणश्रेणिनिर्जराद्यावश्यकानि कुर्वन्नुत्तरोत्तर-समयेषु पूर्वपूर्वसमयाप्राप्तानपूर्वानिव विशुद्धिपरिणामान् प्रतिपद्यमानो जीव. क्षपक उपशमको वापूर्वकरणसंयत इत्यष्टमगुणस्थानवर्ती भवति।

[२२६ अनिवृत्तिकरणनाम नवमगुणस्थानम्]

पुनरेकविंशतिचारित्रमोहनीयप्रकृतीः क्षपयन्नुपशमयंश्च प्रतिसमयं जघन्यमध्यमोत्कृष्टविकल्परहितनानाजीवानामेकं सदृशविशुद्धिपरि-णामस्थानं प्रतिपद्यमानश्चानिवृत्तिकरणसयत इति नवमगुण-स्थानवर्ती भवति।

---

२२५ अपूर्वकरण नामक आठवाँ गुणस्थान

फिर क्षपकश्रेणि अथवा उपशम श्रेणिका आरोहण करके प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि-द्वारा बढता हुआ गुणश्रेणि निर्जरा आदि आवश्यकोको करता हुआ उत्तरोत्तर समयमे पूर्व-पूर्व समयमे अप्राप्त अपूर्व ही विशुद्धि परिणामोको प्राप्त करके क्षपक अथवा उपशमक जीव अपूर्वकरण सयत नामक अष्टम गुणस्थानवर्ती होता है।

२२६ अनिवृत्तिकरण नामक नवम गुणस्थान

इसके बाद चारित्र मोहनीयकी इक्कीस प्रकृतियो का क्षय या उपशम करता हुआ प्रति समय जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट विकल्प रहित नाना जीवोके एक सदृश विशुद्धि परिणाम स्थानको प्राप्त कर अनिवृत्ति-करण सयत नामक नवम गुणस्थानवर्ती होता है।

[२२७ सूक्ष्मसापरायनाम दशमगुणस्थानम्]

पुनः सूक्ष्मत्व(कृ)ष्टिगतलोभानुभागोदयमनुभवन् चारित्रमोहनीय-प्रकृतो. क्षयोपशमयन्प्रतिसमयमनन्तगुणविशुद्धया वर्तमानः प्रशस्त-ध्यानपरिणतः सूक्ष्मसाम्परायेति दशमगुणस्थानवर्ती भवति ।

[२२८ उपशान्तकषायनाम एकादशगुणस्थानम्]

एकविंशतिचारित्रमोहनीयप्रकृतोः समः निरवशेषमुपशमय्य यथा-ख्यातचारित्ररूपविशुद्धिविशेषपरिणतः कतकफलप्रयोगादध.कृता-प्रसन्नतोयसदृशविशुद्धिपरिणाम. शुद्ध(शुक्ल)ध्याननिष्ठ उपशान्त-कषाय-वीतरागछद्मस्थ इत्येकादशगुणस्थानवर्ती भवति ।

[२२९ क्षीणकपायनाम द्वादशगुणस्थानम्]

समस्तमोहनीयप्रकृतीर्निरवशेष निर्मूल्य स्फटिकभाजनगतप्रसन्नतोय-समविशुद्धान्तरङ्गो द्वितीयशुक्लध्यानबलेन ज्ञानावरणीयदर्शनावरणी-यान्तरायरूपघातित्रयं क्षपयन् परमार्थनिर्ग्रन्थ. क्षीणकषायवीतराग-छद्मस्थ इति द्वादशगुणस्थानवर्ती भवति ।

---

२२७ सूक्ष्मसापराय नामक दशम गुणस्थान

फिर सूक्ष्म कृष्टिगत लोभके अनुभागके उदयका अनुभव करता हुआ चारित्र मोहनीयकी प्रकृतियोका क्षय या उपशम करता हुआ, प्रति समय अनन्तगुणी विशुद्धिमे वर्त्तमान, प्रशस्त ध्यान परिणत, सूक्ष्म-सापराय नामक दशम गुणस्थानवर्ती होता है।

२२८ उपशान्त कषाय नामक ग्यारहवाँ गुणस्थान

चारित्र मोहनीयकी इक्कोस प्रकृतियोका पूर्णरूपसे उपशमन करके यथाख्यात चारित्ररूप विशुद्धि विशेष परिणत कतक फल (निर्मली) के प्रयोगसे नीचे बैठ गया है मैल जिसका ऐसे निर्मल जलके समान विशुद्ध परिणाम वाला शुक्ल ध्याननिष्ठ उपशान्त कषाय वीत-राग छद्मस्थ नामक ग्यारहवे गुणस्थानवर्ती होता है ।

[२३० सयोगकेवलिनाम त्रयोदशगुणस्थानम्]

शुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धघातिकर्मचतुष्टयेन्धनः प्रादुर्भूताचिन्त्यकेवलज्ञानदर्शनविशिष्टलोचनद्वयावलोकितकालत्रयवर्तिसमस्तवस्तुसंभृतलोकालोकानन्तसुखसुधारससंतृप्तोऽनन्तानन्तवीर्यामितबलः सकलात्मप्रदेशेषु निचितविशुद्धचैतन्यस्वभावस्तीर्थंकरपुण्यविशेषोदय संप्राप्ताष्टमहाप्रातिहार्यचतुस्त्रिंशदतिशयसमवसरणविभूतिसंभावितकैवल्य -कल्याणो दिवाकरकोटिबिम्बविडम्बितप्रभाभासुरप्रक्षीणतम· परमौदारिकदिव्यदेह इतरकेवली वा स्वयोग्यगन्धकुट्यादिविभूतिर्जगत्त्रयमव्यजनप्रबोधपारायणपरमदिव्यध्वनिश्शतेन्द्रवन्दितस्सयोगकेवलीति त्रयोदशगुणस्थानवर्ती भवति ।

---

२२९. क्षीणकषाय नामक बारहवाँ गुणस्थान

मोहनीय कर्मकी समस्त प्रकृतियोको सपूर्ण रूपसे नष्ट करके स्फटिक पात्रमे रखे स्वच्छ जलके समान विशुद्ध अन्तरगवाला द्वितीय शुक्लध्यानके बलसे ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय तथा अन्तराय रूप तीन घातिया कर्मोंका क्षय करता हुआ परम निर्ग्रन्थ क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ नामक बारहवे गुणस्थानवर्ती होता है ।

२३० सयोगकेवली नामक तेरहवाँ गुणस्थान

शुक्लध्यानरूप अग्निके द्वारा चार घातिया कर्मरूप इन्धनके जल जानेसे प्रकट हुए अचिन्त्य केवलज्ञान तथा केवलदर्शनरूप विशिष्ट नेत्र-द्वयके द्वारा कालत्रयवर्ती समस्त वस्तु समूहसे भरे हुए लोकालोकको देखनेवाले, अनन्त सुखरूप सुधारससे सतृप्त, अनन्त वीर्यरूप अमित बलयुक्त, समस्त आत्म प्रदेशोमे व्याप्त विशुद्ध चैतन्य स्वभाव, तीर्थंकर पुण्य विशेषके उदयसे प्राप्त हुए अष्ट महाप्रातिहार्य, चौंतीस अतिशय, समवशरण विभूतिके द्वारा मनाया गया है कैवल्य कल्याणक जिनका, करोडो सूर्योंके प्रतिबिम्बको तिरस्कृत करनेवाली

[२३१ अयोगकेवलिनाम चतुर्दशगुणस्थानम्]

पुनः स एव यद्यन्तर्मुहूर्तावशेषायुस्स्थितिस्ततोऽधिकशेषाघातिकर्मत्रय-स्थितिस्तदाष्टभिः समयैर्दण्डकवाटप्रतरलोकपूरणप्रसर्पणसंहारस्य समुद्घातं कृत्वान्तर्मुहूर्तावशेषितायु स्थितिसमानशेषाघातिकर्मस्थिति-स्सन् सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिनामतृतीयशुक्लध्यानबलेन कायवाङ्मनो-निरोधं कृत्वायोगकेवली भवति। यदि पूर्वमेव समस्थितिं कृत्वा घातिचतुष्टयस्तदा समुद्घातक्रियया विना तृतीयशुक्लध्यानेन योग-निरोधं कृत्वायोगकेवली भवति।

प्रभासे देदीप्यमान परम औदारिक दिव्य देहसे युक्त तीर्थंकर अथवा स्वयोग्य गन्धकुटी आदि विभूतिसे युक्त सामान्य केवली परम दिव्य-ध्वनि द्वारा तीनो लोकोके भव्य जनोको प्रबोध देनेमे तत्पर, सौ इन्द्रोके द्वारा वन्दनीय सयोगकेवली तेरहवे गुणस्थानवर्ती हैं।

२३१ अयोगकेवली नामक चौदहवाँ गुणस्थान

फिर वही (सयोगकेवली) यदि अन्तर्मुहूर्त आयु स्थिति शेष रहने पर उससे अधिक शेष तीन अघातिया कर्मोकी स्थिति शेष रहती तो आठ समयो द्वारा दण्ड, कवाट, प्रतर, लोक पूरण, प्रसर्पण पुनः प्रतर कपाट और दण्डरूप सहारके द्वारा समुद्घात करके, अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट आयु स्थितिके समान शेष घाति कर्मोकी स्थिति होनेपर सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती नामक तृतीय शुक्लध्यानके बलसे मन, वचन, कायका निरोध करके अयोगकेवली होता है। यदि पहले ही घाति कर्मोकी स्थिति आयु कर्मकी स्थितिके बराबर होती है, तब समुद्घात क्रियाके बिना तृतीय शुक्लध्यानके द्वारा योग निरोध करके अयोगकेवली होता है।

[२३२. मुक्तावस्थाया स्वरूपम्]

पुनः स एवायोगकेवली सकलशीलगुणसंपन्नो व्युपरतक्रियानिवृत्ति-नामचतुर्थशुक्लध्यानेन पञ्चलघ्वक्षरोच्चरणमात्रस्वगुणस्थानकाल-द्विचरमसमये देहादिद्वासप्ततिप्रकृतीः क्षपयित्वा पुनश्चरमसमये-एक-तरवेदनीयादित्रयोदशकर्मप्रकृतीः क्षपयित्वा तदनन्तरसमये निष्कर्मा-शरीरस्सम्यक्त्वाद्यष्टगुणपुष्टपरमशरीरात्किंचिदूनपुरुषाकारविशुद्धि - ज्ञानदर्शनमयो जीवो घनस्वरूप ऊर्ध्वगमनस्वभावादेकस्मिन्नेव समये लोकाग्रं गत्वा सिद्धपरमेष्ठी सन्सर्वकालमनन्तसुखतृप्तः केवलज्ञान-दर्शनद्वयनिर्मललोचनद्वयेन त्रिकालगोचरानन्तद्रव्यगुणपर्यायान् लोका-लोको च जानन् पश्यन्नवतिष्ठते । लोकाद्बहिः सति सहकारि-धर्मास्तिकायाभावान्न गच्छति । अत एव लोकालोकविभागश्च ।

---

२३२ मुक्तावस्थाका स्वरूप

फिर वही अयोगकेवली समस्त शील गुण सपन्न व्युपरत क्रिया निवृत्ति नामक चतुर्थ शुक्लध्यानके द्वारा पाँच लघु अक्षरोके उच्चा-रण करने योग्य, अपने गुणस्थान कालके द्विचरम समयमे देह आदि बहत्तर प्रकृतियोका क्षय करके फिर चरम समयमे एकतर वेदनीय आदि तेरह कर्म प्रकृतियोका क्षय करके उसके अनन्तर समयमे, निष्कर्म, अशरीर, सम्यक्त्व आदि अष्ट गुण युक्त, अन्तिम शरीरसे कुछ न्यून पुरुषाकार, विशुद्ध ज्ञान-दर्शनमय, घनस्वरूप जीव ऊर्ध्वगमन स्वभावके कारण एक ही समयमे लोकके अग्र भागमे जाकर सिद्ध परमेष्ठी होकर, अनन्तकाल तक अनन्त सुखसे तृप्त केवलज्ञान तथा केवलदर्शनरूप निर्मल लोचन द्वयके द्वारा त्रिकाल गोचर अनन्त द्रव्य गुण पर्यायोको तथा लोक-अलोकको जानता-देखता अवस्थित रहता है। वह लोकके आगे, सहकारी धर्मास्तिकायके न होनेके कारण, नही जाता । और इसीलिए लोक तथा अलोकका विभाग है ।

इति सकलकर्मप्रकृतिरहितसिद्धात्मस्वरूपं प्राप्तुकामा भव्या अनवरतं परमागमाभ्यासजनितनिर्मलसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपोभावनानिष्ठा भवन्तु ।

जयन्ति विधुताशेषपापाञ्जनसमुच्चयाः ।
अनन्तानन्तधीर्दृष्टिसुखवीर्या जिनेश्वराः ॥

कृतिरियमभयचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिनः ।

इति कर्मप्रकृति ।

इस प्रकार समस्त कर्मप्रकृतियोसे रहित सिद्धोके आत्म स्वरूपको प्राप्त करनेके इच्छुक भव्य जीव निरन्तर परमागमके अभ्यास-द्वारा उत्पन्न निर्मल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र और तपकी भावनासे विशिष्ट हो ।

जिन्होने समस्त पाप-मलके समूहको धो डाला है तथा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्यको प्राप्त कर लिया है, वे जिनेन्द्रदेव जयवन्त हो ।

यह कृति अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती की है ।

कर्मप्रकृति समाप्त ।

शब्दानुक्रम

सख्या सकेत क्रमाङ्कोंका है।

■